योगविद्या

वर्ष 5 अंक 12
दिसम्बर 2016
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2016

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर तथा अन्दर के रंगीन फोटो : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

आध्यात्मिक जीवन

हे साधक! सुनो, आध्यात्मिक जीवन एक जोखिम भरा सफर है। यह मात्र माला के मनके गिनना या नासिकाओं को खोलना-बन्द करना नहीं है। आध्यात्मिक मार्ग पर तुम्हें अकेले चलना होगा। तुम्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना होगा। अदम्य साहस और असीम धैर्य की आवश्यकता होगी।

अध्यात्म मार्ग पर आने वाली कठिनाइयाँ और बाधाएँ तुम्हें मजबूत बनाती हैं। वे तुम्हारे दोषों और कमियों को उजागर करती हैं, इसलिए उन्हें आध्यात्मिक उन्नति के लिए सीढ़ी बनाया जा सकता है। वे तुम में नया उत्साह, सामर्थ्य और शक्ति भर देती हैं। वे तुम्हारी परीक्षा भी लेती हैं। निराश मत होना। दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ो और जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करो।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 5 अंक 12 • दिसम्बर 2016
(प्रकाशन का 54 वाँ वर्ष)

विषय सूची

इस विशेषांक में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सत्संगों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह है

4 ध्यान में गुरु की भूमिका
8 अजपा जप का रोगों में प्रयोग
16 सत्यम् की झाँकी
18 निद्रा भी साधना बन सकती है
24 प्राण विद्या
32 गुरु कृपा
34 मानसिक समस्याओं का निराकरण
41 छत्रपति-चतुष्पदी
42 सहज साधना
46 आश्रम परम्परा
51 छाया समाधि—संकल्प की पराकाष्ठा
52 महापुरुष की छवि

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

ध्यान में गुरु की भूमिका

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'ईशावास्योपनिषद्' से उद्धृत

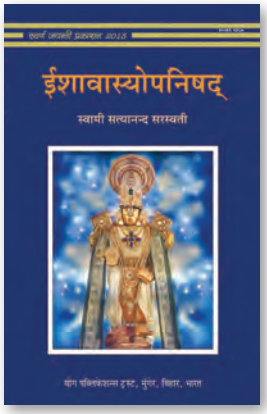

अध्यात्म-मार्ग में दो बातें प्रमुख हैं, एक है साधन, और दूसरा साध्य। अनेकों उपासक गलती से साधन को ही साध्य मान बैठते हैं। पूजा या जप, जिसकी महत्ता शास्त्रों में बताई गई है, वे साधन ही हैं, साध्य नहीं हो सकते। साध्य तो केवल मात्र आत्म-दर्शन है, आत्मानुभूति है। जिस समय आत्म-दर्शन होने लगता है, सभी साधनायें स्वयं समाप्त हो जाती हैं। ईशावास्य उपनिषद् में जितनी भी साधनायें, विद्या-अविद्या, संभूति-असंभूति, या कर्म-अकर्म की बातें बतलाई गई हैं, सब-की-सब एक स्थल पर आकर स्वयं समाप्त हो जाती हैं। ये सभी साधनायें बहिरंग हैं। इसके बाद एक दूसरी ही साधना प्रारम्भ होती है।

इन्द्रियों के द्वारा हम जिन साधनाओं को करते हैं, वे सभी बहिरंग हैं, चाहे वह राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग या कर्मयोग ही क्यों न हो। वैसे तो शास्त्रों में लिखा है कि यम-नियम, आसन एवं प्राणायाम बहिरंग-साधना है, और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि अंतरंग-साधना। एक अन्य जगह लिखा है कि अपरा-भक्ति बहिरंग साधन है और पराभक्ति अंतरंग। वैसे ही कर्म बहिरंग, अनासक्ति अंतरंग। सत्संग बहिरंग साधन है, तथा चिंतन-मनन अंतरंग। पर यदि अनुभव के आधार पर देखा जाय तो एक स्थिति में पहुँचने पर उपरोक्त सब-के-सब बहिरंग हो जाते हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की दृष्टि में आसन, प्राणायाम, यम और नियम बहिरंग साधन हैं। इन्द्रियों के द्वारा की जाने वाली साधनायें बहिरंग हैं, और इनकी अपेक्षा मन के माध्यम से की जाने वाली साधनायें अंतरंग। लेकिन यदि इनकी तुलना बुद्धि के माध्यम से की जाने वाली साधना से की जाय, तो मन के द्वारा की जाने वाली साधनायें बहिरंग जान पड़ेंगी और बुद्धि से की जाने वाली अंतरंग। इसी प्रकार मन, बुद्धि, इन्द्रिय और चित्त की समान क्रियाओं के आधार पर की जाने वाली सभी साधनायें बहिरंग ही हैं। इस प्रकार एक स्थिति आती है, जब इन्द्रियों के द्वारा की जाने वाली तपस्या, मन के द्वारा किया जाने वाला ध्यान, बुद्धि के द्वारा किया जाने वाला आत्म-निर्णय, और चित्त के द्वारा देखे जाने वाले प्राचीन संस्कार आदि सब-के-सब एक जगह पर पहुँचकर ठप्प हो जाते हैं।

कल्पना कीजिये कि आप किसी अंधेरी सुरंग से गुजर रहे हैं। कुछ दूर तक तो बाहर का प्रकाश आपकी सहायता करता है, जिसके आधार पर आप आगे बढ़ते हैं। कुछ और आगे बढ़ने के बाद अंधकार और भी गाढ़ा हो जाता है। पर आप रास्ता सीधा होने के कारण कुछ और आगे बढ़ते हैं। फिर एक ऐसा भी स्थल आता है, जहाँ पहुँचने पर लगता है कि सामने का रास्ता एक दीवार से बंद है। अगल-बगल चारों ओर मीलों अंधेरा रास्ता है, जिसका कोई पता नहीं। यहाँ यदि सामने का रास्ता स्वयं खुल जाय तो संभव है कि आप आगे बढ़ सकते हैं, अन्यथा क्या उपाय है? बस यही स्थिति ध्यान के मार्ग की है। यद्यपि तीन अक्षरों से बना 'समाधि' शब्द बड़ा सरल मालूम पड़ता है, पर यह स्वयं गम्य है ही नहीं, भले ही पुस्तकों में लिखा रहे कि समाधि प्रत्येक मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। एक खास स्थिति तक या यूँ कहें कि सूक्ष्म की स्थिति तक आप स्वयं जा सकते हैं, यहाँ तक कि कारण-शरीर में भी कुछ हद तक बढ़ सकते हैं। चेतना के भी कुछ स्तरों को भेद सकते हैं, क्योंकि ज्यों-ज्यों आप ध्यान में आगे बढ़ते हैं, आपकी चेतना क्षीण पड़ती जाती है, पर एक ऐसी स्थिति आती है, जहाँ आप स्वयं शून्य हो जाते हैं, आप बुत बनकर बैठ जाते हैं। आपको पता ही नहीं रहता कि आप कौन हैं, और कहाँ जाना चाहते हैं। यहाँ से आगे साधक तब तक नहीं बढ़ सकता है, जब तक कि उसे बढ़ाने वाला कोई गुरु न हो। यही कारण है कि ईशावास्य उपनिषद् के सोलहवें मंत्र में आत्म-दर्शन के लिये स्वयं आत्म-तत्त्व से अनुरोध किया गया है। साधक जिसका रूप देखना चाहता है, उसी से अनुरोध करता है।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥

हे पोषण करने वाले! हे ज्ञान-स्वरूप प्रकाशमय सूर्य! हे प्रजापतियों के प्रिय! प्रकाश किरणों को फैलाओ, जिससे मैं तुम्हारे कल्याणमय स्वरूप को देख सकूँ। यह अनुभूति हो कि मैं वही हूँ। जिस स्वरूप को मैं देखता हूँ, मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है।

यहाँ एक और विषय का बोध होता है। अध्यात्म की इस स्थिति में भी साधक को द्वैतबुद्धि रहती है। उपासक और उपास्य की यह द्वैत बुद्धि नहीं रहती तो वह उस महान सत्ता से इस प्रकार प्रार्थना नहीं करता। अब प्रश्न उठता है कि अध्यात्म की इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये किसका सहारा लिया जाय? कुछ लोगों की राय है कि गुरु ही एकमात्र आलम्बन है, पर कुछ के अनुसार स्वयं भगवान ही आलम्बन है। कुछ ऐसा भी मानते हैं कि बिना इस पर सोचे केवल साधना करते जाना चाहिये।

किसी को गुरु बना लेने मात्र से ही वह श्रेष्ठ आलम्बन हो जाय, ऐसी बात नहीं है। ध्यान की उस स्थिति में जहाँ व्यक्ति का जीव-भाव नहीं रहता, उसकी

व्यक्तिगत चेतना नहीं रहती, उसको आगे गुरु ही ले चलता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब साधक की चेतना अंतर्लोकों में गमन करती है तो वहाँ एक स्थल पर वह रुक जाती है। वहाँ से उसे गुरु का सूक्ष्म-रूप ही आगे ले जाता है। गुरु में इतनी शक्ति रहनी चाहिये कि वे स्थूल रूप में तो रहें, पर सूक्ष्म रूप में भी रह सकें। जिस गुरु का सूक्ष्म-रूप प्रबल होगा, वही साधक को सूक्ष्म अवस्था में आगे ले जा सकता है।

हमारे यहाँ 'गुरु' शब्द दो अर्थों में व्यवहृत हुआ है। एक तो अंधकार का निवारण करने वाला गुरु होता है, दूसरा वह जिससे हम मंत्र-दीक्षा लेते हैं। गुरु वह है, जो हमारी अध्यात्म-साधना में पथ-प्रदर्शक का काम करता है। हमारे शरीर के अन्दर एक प्रमुख-चक्र है जिसे हम 'आज्ञा चक्र' कहते हैं। कुछ लोग इसे गुरु-चक्र भी कहते हैं। इसका स्थान भ्रूमध्य के पीछे जहाँ सुषुम्ना समाप्त होती है, वहीं है। इसकी एक अपनी विशेषता है। साधना के सिलसिले में ज्यों-ज्यों साधक की बाह्य चेतना अंतर्मुखी होती जाती है, उसी अनुपात में यह चक्र जगता जाता है। एक ओर मन, बुद्धि, चित्त और इन्द्रियों का लोप होते जाता है, तथा दूसरी ओर इष्ट-देव का चित्र स्पष्ट होता जाता है और इसके साथ-ही-साथ आज्ञा-चक्र जाग्रत होता जाता है। ज्यों ही इन्द्रियाँ बहिर्मुख हुईं कि वह अन्दर गया। ध्यान की अवस्था में उन्हीं का आज्ञा चक्र जागृत होता है, जिनकी इन्द्रियाँ कम चंचल हैं और मन एक हद तक शांत तथा अनासक्त है। कुछ ऐसे भी हैं जिनका आज्ञा चक्र ध्यान तथा ध्यान के बाहर भी जाग्रत रहता है, पर ऐसे व्यक्ति विरले ही मिलते हैं।

ध्यान की अवस्था में जब आदेश ग्रहण करने वाली प्रत्येक इन्द्रिय सो जाती है, तब यही आज्ञा चक्र गुरु का सूक्ष्म आदेश ग्रहण करता है। इसके सिवाय अनुभव के सभी झरोखे बन्द हो जाते हैं। स्थूल और सूक्ष्म के बीच एक पर्दा है, स्वर-निरोधक के जैसा। जब कोई स्थूल अवस्था में रहता है तो उसे सूक्ष्म स्वर सुनाई नहीं देता और जब सूक्ष्म में चला जाता है, तो स्थूल आवाज सुनाई नहीं देती। एक क्षेत्र में होने वाले अनुभव का प्रवेश दूसरे क्षेत्र में नहीं हो पाता है। ध्वनियों का प्रतिक्षण आन्दोलन होता है और हमारी इन्द्रियाँ एक खास हद तक होने वाले कम्पन को पकड़ने की क्षमता रखती हैं, न अधिक न कम।

गुरु जिन शब्दों के माध्यम से शिष्य को आदेश देता है, वे शब्द सूक्ष्म होने चाहिये। गुरु भी ऐसे हों जो शब्दों की सूक्ष्म प्रेषण कला को जानें। ये शब्द विचारों से उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि विचार तो मन से पैदा होते हैं। फिर वे सूक्ष्म कैसे हो सकते हैं? सूक्ष्म शब्द केवल गुरु की आत्म-प्रेरणा से उत्पन्न होते हैं। इसीलिये जो गुरु सूक्ष्म में रहते हैं, वे ही सूक्ष्म शब्द पैदा कर सकते हैं, पर यह कितना कठिन है! सदा सूक्ष्म में रहना सम्भव नहीं। इस अवस्था में कर्म-क्रिया नहीं होती है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती हैं। इसके लिये क्रिया-कर्म, जगत् के बंधन, सुख-दु:ख से दूर, इन्द्रिय, मन, और बुद्धि के भी ऊपर, शुभ या अशुभ, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, जो भी प्रभाव हो, छोड़ना पड़ता है।

ऐसा गुरु शायद ही मिलता है। यद्यपि उसकी सभी इन्द्रियाँ स्वाभाविक कार्य करती हैं, पर वह रहता है सूक्ष्म में। ऐसा गुरु जब अपने शिष्य को शब्दों का बाण मारता है, तब उसके आज्ञा चक्र में एक प्रकार की प्रतिस्फूर्ति होती है, जो उसे साधना-पथ पर आगे ले जाती है। जिस समय शिष्य को यह शब्द-बाण लगता है, उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे वह किसी अन्धेरे कमरे से आगे निकल गया हो, और एक बहुत बड़े क्षेत्र में पहुँच गया हो। वह दुनिया स्वप्नों या संस्कारों की दुनिया जैसी दिखलाई नहीं देती। वह देखने में बिल्कुल स्थूल जगत् जैसी लगती है, जहाँ सभी कार्यकलाप, अनुभव, स्पर्श आदि ठीक बाह्य जगत् जैसे ही होते हैं। यह अंतर्जगत् ठीक बाह्य-जगत् के जैसा ही है, केवल एक फर्क है। बाह्य जगत् नाशवान् है, अंतर्जगत् अविनाशी। उस जगत् में पहुँचने के बाद यह जगत् एक बार असत्य दिखाई पड़ने लगता है। यह तभी सम्भव है जब आज्ञा चक्र खुल जाता है, और वहाँ गुरु का आदेश सुनाई पड़ने लगता है। इसके आगे साधक को गुरु के शब्द को छोड़कर कोई साधना सुनाई नहीं देती। यहाँ तक तो उसने अनेक उपाय कर आज्ञा चक्र को जगाया। इसके आगे गुरु के ही शब्द ले जाते हैं। आगे बढ़ने के बाद वह आत्मा के प्रकाश का अनुभव करता है और देखता है कि मैं और मेरी आत्मा, दोनों एक हैं। दोनों के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं। 'जानत तुमहि तुमहि होई जाई' वाली बात होती है। यही राजयोग, कर्मयोग, या अन्य साधनाओं का साध्य है।

अजपा जप का रोगों में प्रयोग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'अजपा जप एवं चिदाकाश धारणा' से उद्धृत

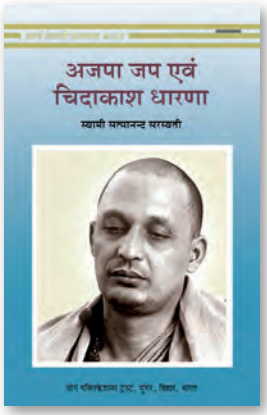

अजपा के द्वारा अपनी बीमारियों को भी अच्छा किया जा सकता है। बीमारियाँ मुख्यत: तनावों के कारण होती हैं। शरीर, मन और भावनाओं पर रोज ही अनुकूल और प्रतिकूल आघात पड़ते रहते हैं, यही रोग का कारण है।

तनाव तीन प्रकार के होते हैं– शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक। शारीरिक तनाव अत्यधिक श्रम और लगातार एक ही प्रकार का श्रम करने से होता है। शारीरिक तनाव अनिच्छापूर्वक काम करने से भी होता है या मैं परिश्रम कर रहा हूँ, इस भावना के कारण होता है। यदि मनुष्य श्रम शब्द भूल जाए, तो वह सिर्फ दो या एक समय भोजन और सिर्फ तीन घण्टे का शारीरिक विश्राम लेकर शेष समय में काम कर सकता है। अधिक सोने, दिन चढ़े तक सोने, अधिक खाने और व्यायाम नहीं करने से तथा तामसिक भोजन से भी शारीरिक तनाव होता है। इस तनाव को दूर करने का सरल तरीका है योगासन। पन्द्रह मिनट प्रतिदिन सुबह-शाम योगासनों के अभ्यास से शरीर की बैटरी पुन: चार्ज हो जाती है।

मानसिक तनाव बहुत ज्यादा सोचने से होता है। सोचना तो वही चाहिए, जिसके बारे में सोचने की जरूरत हो, परन्तु लोग काम की बातें कम और बेकाम की बातें अधिक सोचते हैं। इसलिए तनाव होते हैं। सिर्फ काम की बातें सोचने से तनाव नहीं हो सकता, क्योंकि वह किसी माध्यम से प्रकट हो जाता है। कर्म, वाणी और लेखनी द्वारा मानसिक तनाव दूर होना चाहिए। मनुष्य पिछली बातों और घटनाओं पर बहुत अधिक सोचता है। किसी से झगड़ा हुआ, कोई दुर्घटना हो गई, किसी ने गाली दी तो सोचना चालू हो जाता है। सोचने से मानसिक तनाव पैदा होते हैं, जिन्हें तुम देख नहीं पाते और न उन्हें दूर करने का तुम्हें कोई तरीका मालूम है। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, व्यापारी और बुद्धिजीवी, सभी मानसिक श्रम करते हैं, पर खर्च की हुई मानसिक शक्ति की पुन: आपूर्ति कर लेने का कोई साधन नहीं जानते। इसलिए युवावस्था पार करते ही रोग, कमजोरी, सफेद बाल आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

अत्यधिक मानसिक तनाव बढ़ जाने से दिमागी ताकत का सुन्न हो जाना लाखों की तादाद में देखने को मिलता है। मानसिक तनाव के बढ़ जाने से शिराएँ फटने

लगती हैं, आँखें कमजोर होती हैं, कब्ज रहती है, डकारें आती हैं, सिगरेट पीने को जी चाहता है, चाय की याद आती है, और जब शारीरिक एवं मानसिक तनाव मिलकर आते हैं, तब काम और वासना के आवेग भी आते हैं।

बीमारी का तीसरा कारण है, भावनाओं का तनाव। मनुष्य भावनाओं के थपेड़े खाता रहता है। हर वस्तु के साथ वह केवल बुद्धि और ज्ञान का भाव नहीं रख पाता। भावनाएँ यथार्थ न होने पर भी मनुष्य उनसे चिपका रहता है और जब भावनाओं पर ठेस लगती है तब प्रतिक्रिया-स्वरूप रोग का जन्म होता है।

यदि किसी का प्रिय मित्र, पुत्र, स्त्री, सम्बन्धी अगले दिन कहीं दूर से आने वाले हों तो उसे रातभर नींद नहीं आएगी। एक घण्टे के बाद परीक्षा-फल घोषित होने वाला होगा तो दिल तेजी से धड़कना शुरू हो जायेगा। रात को एकाएक बेटे को हॉस्टल में घर की याद आती है। सरकार ने गोल्ड-पॉलिसी घोषित की तो लाखों सुनार कैसे सोचते और चलते होंगे?

भावनात्मक तनाव से हृदय रोग होने लगते हैं। ये तनाव अनजाने व्यवहारों में प्रकट होते हैं। कुछ लोग अपने पैरों को बराबर हिलाते रहते हैं। कुछ कन्धे उचकाते रहते हैं। कुछ लोग सीटी मारते या गुनगुनाते रहते हैं। कुछ लोग अन्य कई प्रकार के व्यवहार, जैसे बार-बार पलक झपकाना, नाक फूँकना आदि अनजाने में अपना लेते हैं। यह सब अस्वाभाविक और अनावश्यक बर्ताव मनुष्य के अन्दर के तनाव को व्यक्त करने के लिए होते हैं। तनाव तो होते ही रहेंगे जब तक मनुष्य को पूर्ण वैराग्य न हो। गृहस्थ तो तनाव से बच नहीं सकते।

तनाव के समय नाड़ियों में खून का प्रवाह अधिक हो जाता है, जिससे उच्च रक्तचाप भी हो सकता है। यदि समय पर इसे रोका न गया तो इससे लकवा भी हो सकता है। कभी स्नायविक तनाव, कभी भावनात्मक तनाव, तो कभी तीनों के मिश्रित कारण से रोग होता है। कोई व्यक्ति ऑफिस से आकर अपनी पत्नी और बच्चों पर बिगड़ता है, तो उसका कारण कभी शारीरिक तनाव होता है तो कभी मानसिक या भावनात्मक तनाव। थके रहने के कारण वह क्रोध करता है। दिमागी उलझन से भी मनुष्य को सरदर्द, कब्ज, एसीडिटी, दिल का दर्द आदि रोग होते हैं। जब व्यक्ति अपने को उपेक्षित समझता है और भावनाओं की तुष्टि नहीं हो पाती है, तब उसे संक्रामक रोग पैदा हो जाते हैं, जैसे, टी.बी., कुष्ठ रोग, दमा, गठिया इत्यादि।

चेतना में ग्रथित संस्कार

इन तनावों को दूर करने की मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनानी पड़ेगी। वह मनोवैज्ञानिक और यौगिक पद्धति है अजपा-जप का अभ्यास। अजपा के अभ्यास से उपर्युक्त तीनों प्रकार के तनाव दूर होते हैं। अजपा से विश्राम मिलता है और चेतना भी रहती है, पर यह कैसे?

अजपा करते-करते व्यक्ति पहले दैहिक तनाव दूर करता है। दैहिक शांति होने पर वह अपने अन्दर के कमरों में एक-एक कर प्रवेश करता है। अन्दर जाने पर उसे चेतना के कई स्तर मिलते जाते हैं, जहाँ मनुष्य के पूर्वचेतन के तनाव विचार रूप में प्रकट होते हैं। जो-जो बातें व्यक्ति के अन्त:करण में रहती हैं, वे सम्बन्धित विचारों के माध्यम से आने लगती हैं। उनके आने से घबराना नहीं चाहिए और न उन्हें रोकना चाहिए। उन्हें प्रकट होने देना चाहिए।

अजपा के द्वारा तनाव दूर होते हैं, शिथिलीकरण होता है और शिथिलीकरण जितना गहरा होगा उतने ही दबे हुए संस्कार प्रकट होते जाएँगे। ये दबे, पुराने संस्कार मनुष्य की चेतना के हर स्तर पर रहते हैं। अजपा के द्वारा मनुष्य जितनी गहराई में उतरता जाएगा, वहाँ-वहाँ के संस्कार उसके सामने प्रकट होते जाएँगे। चेतना के विचार, पूर्वचेतना के संस्कार, फिर अवचेतन की वासना, फिर अचेतन की अविद्या। इन संस्कारों के प्रकट होने पर इन्हें रोकना कभी नहीं चाहिए, बल्कि अजपा के द्वारा इनकी निकासी होनी चाहिए।

दबे हुए संस्कार पहले विचार, फिर स्वप्न, फिर यौगिक स्वप्न के रूप में प्रकट होते हैं। जब संस्कार प्रकट हों तो तीन पहलुओं का ख्याल रखना चाहिए। पहला, नींद न आने पाए; दूसरा, अजपा का तार न टूटे; तीसरा, संस्कारों को भी द्रष्टा की भाँति देखते हुए चलो। ऐसा करते-करते तुम्हारी चेतना के एक-एक स्तर के संस्कार प्रकट होकर खत्म होते जाएँगे और तुम चेतना की अन्य गहराइयों में उतरते जाओगे।

तुम जो कुछ देखते, सुनते और विचार करते हो, केवल उन्हीं से तुम्हारे संस्कार नहीं बनते, बल्कि तुम्हारी दृष्टि, श्रुति, स्पर्श और गन्ध के क्षेत्र में जितनी चीजें आती हैं, वे सब संस्कार बनकर अन्दर में जमा होती जाती हैं। मान लो, तुम कहीं टहलने गए हो और सीधे सामने की ओर देखते जा रहे हो, अगल-बगल की चीजें तुम नहीं देख रहे हो। फिर भी तुम्हारी दृष्टि के क्षेत्र में जितनी चीजें आयेंगी, उन सबका प्रतिबिम्ब तुम्हारे सूक्ष्म-शरीर में संस्कार बनकर रहेगा। यदि कोई कच्चा मांस खा रहा है और तुमने उसे देखा नहीं, किन्तु तुम्हारी दृष्टि के अन्दर वह आया है, तो उसका भी संस्कार तुम्हारे मन पर पड़ेगा। चेतन मन का उत्तर तो बस यही होगा कि तुमने व्यक्ति को कच्चा मांस खाते नहीं देखा, परन्तु नेत्रों के लेंस तो ऐसे हैं कि इनकी सीमा के अन्दर जो कुछ भी आएगा, उन सबकी छाया अन्त:करण में जमा होती जाएगी और वह प्रकट होती है केवल पूर्ण शान्ति की अवस्था में।

अजपा इसी शान्ति या विश्राम की एक परम सहज साधना है। अजपा में अचेतन अवस्था नहीं आती। चेतना रहती है, पर बाहर के जगत् में न रहकर अन्दर के जगत् में। यह चेतना अजपा के अभ्यास के माध्यम से लोक-लोकान्तरों को पार करती हुई आगे बढ़ती जाती है। मनुष्य की स्मृति तेज हो जाती है, 'संवेदनशीलता' बढ़ जाती है और पीछे की सब बातें धीरे-धीरे याद आने लगती हैं। चार, दस,

बीस, चालीस, अस्सी वर्ष पीछे की भी घटनाएँ और स्मृतियाँ ताजी होती जाती हैं। गर्भावस्था की ही नहीं, बल्कि पूर्वजन्म की स्मृतियाँ भी गहरे विश्राम में जगने लगती हैं। गुरु पक्का और चेला सच्चा हो, तो यह अवस्था बड़ी सरलता से आती है, बड़ी जल्दी जाती है।

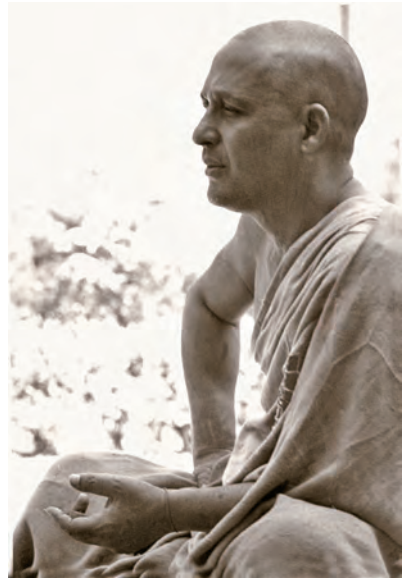

यौगिक मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य ध्यान की जितनी गहराइयों में उतरता है, उसी के हिसाब से उसके भूत और भविष्य के संस्कार प्रकट होते हैं। न केवल इस जन्म की बीती घटनाओं की स्मृतियाँ आती हैं, बल्कि पूर्वजन्म के सारे संस्कार यथाक्रम प्रकट होते हैं। जैसे-जैसे चेतना बाहर से हटकर अन्दर आएगी, वैसे-वैसे भूत-भविष्य का रिकॉर्ड खुलता जाएगा।

पूर्वजन्म के संस्कारों के प्रकट होने के कारण का तो तुम अनुमान लगा सकते हो, परन्तु भविष्य के संस्कारों के बीज भी मनुष्य स्वयं तैयार करता रहता है। जिस तरह विश्रांति में स्मृति तीव्र होती है, उसी तरह दृष्टि का भी विस्तार होता है। मनुष्य की कल्पना शक्ति ऊपर उठकर एक स्वरूप बना लेती है या देख लेती है कि आगे कुछ वर्षों के बाद क्या घटने वाला है।

एक व्यक्ति है, उसकी कई लड़कियाँ हैं। उसे उनके बचपन से ही विवाह की चिन्ता शुरू हो जाती है। इसी तरह एक संस्कार पैदा हो जाता है। यह भविष्य का संस्कार है, जो कभी-कभी किसी रूप में स्वप्न या ध्यान में उतरता है। इसी प्रकार पत्नी के मन में पति, पुत्र तथा सम्बन्धियों को लेकर भविष्य के संस्कार पहले तैयार रहते हैं। ऐसे ही संस्कार सबके अंत:करण में रहते हैं, जो घटने के पहले ध्यान में प्रकट हो जाते हैं। अजपा के द्वारा विश्रान्ति लाने पर दोनों बातें होती हैं—पूर्व की घटनाएँ, दबी हुई हर एक इच्छा, हर एक विचार, साथ-साथ भविष्य के संस्कार भी स्पष्ट दिखते हैं।

अजपा का अभ्यास

संस्कार एकदम तो नहीं मिटते। निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करने तक रहते ही हैं, किन्तु उनका बोझ अवश्य हल्का हो जाता है। इन संस्कारों को निकाल देने से रोग की जड़ कट जाती है। इसलिए अजपा का अभ्यास हर एक आदमी के लिए बहुत

जरूरी है। इसके साथ ही तुम संकल्पों के द्वारा अपने दोषों को दूर कर सकते हो। रोगों को दूर करने के लिए व्यक्ति को अजपा का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिए।

पहले आसन में बैठकर अजपा करो और जब अर्ध-जागृति और अर्ध-निद्रा सी मालूम पड़े, उस समय कुछ संकल्पों के द्वारा अपने अन्त:करण में ऐसे संस्कार भरो, जिन्हें तुम अपने अंदर लाना चाहते हो। उदाहरण के लिए, 'मैं सिगरेट की आदत छोड़ दूँगा', 'मैं चिन्ता नहीं करूँगा', 'मेरा स्वास्थ्य ठीक है', 'मैं अच्छा हो रहा हूँ', 'मुझमें दिव्य शक्ति भर रही है'।

अन्त:करण जब अन्दर चला जाता है उस समय उसे जो कुछ भी आज्ञा तुम देते हो, वह तुरन्त ही ग्रहण कर लेता है। इसलिए रोग उपचार के लिए भी अजपा जप का अभ्यास शुरू कर देना चाहिए। अन्त:करण में जहाँ ग्रन्थियाँ होंगी, जहाँ रोग के संस्कार दबे होंगे, जहाँ भावनाओं को ठेस पहुँची होगी या दैहिक चोट लगी होगी—उन सबके संस्कार दृश्य बनकर चेतना की सतह पर आएँगे तथा वे सब प्रकट हो जाएँगे। संस्कारों को दो रास्तों से हल्का किया जा सकता है, वैराग्य से अथवा ध्यान में प्रकट कर देने से। इस तरह तुम अपना उपचार खुद कर सकते हो।

अजपा का अभ्यास दिन में तीन बार किया जा सकता है। पहला अभ्यास प्रात:काल चार बजे से छ: बजे तक करो। उस समय अभ्यास में श्रम नहीं लगता। निद्रा से उठने के कारण मन स्वयं अन्दर रहता है और बहिर्मुखी नहीं होना चाहता। अन्तर्मुखी अवस्था में जो कुछ किया जाएगा, वह तुरन्त अन्दर चला जाएगा। ऐसे समय में उठकर पहले अजपा का अभ्यास करो, उसके बाद शुभ विचार और संस्कार अपने अन्दर भरो।

अजपा का दूसरा अभ्यास सन्ध्या के समय होना चाहिए। कार्य समाप्त कर घर आते ही पहले आराम कुर्सी पर बैठो। पैरों को फैला लो और आरामदायक स्थिति में बैठो या अधलेटे रहो। आधे घण्टे अजपा करो। अजपा को साधुओं की साधना

न समझ कर विश्राम की विधि समझो। बीच में स्वप्न या संस्कार दिखें, तो उन्हें देखते जाओ, मन में नोट करो और बाद में लिख भी लो। इसके बाद उठकर हाथ-मुँह धोओ, घर के काम-काज में लगो, बीवी-बच्चों की फरियाद सुनो, जलपान करो या जो कुछ भी करना हो करो। इतना नियम बनाओ कि बाहर से घर में आते ही पहले अजपा और स्वास्थ्य के संस्कार भरो।

तीसरी बार रात में सोने के समय लेटकर अजपा का अभ्यास करो। रात में अजपा लेटकर किया जा सकता है, किन्तु प्रात: नहीं। रात में अजपा करते-करते सोओ, किन्तु निद्रा और जागृति की देहरी पर पहुँचते ही अपने निश्चित संकल्पों को दुहराओ। अन्त:करण को आदेश देना, निरोग होने की आज्ञा देना मत भूलो।

सुबह और शाम की अजपा में तुम्हें नींद को रोकना है, इसका ध्यान हमेशा रखो। अत: प्रात:काल की अजपा निष्ठापूर्वक आसन में बैठकर ही करो। सन्ध्या में किसी आरामदायक आसन में, किन्तु सोने के पूर्व लेटकर करो और करते-करते संकल्प दुहराने के बाद सो जाओ।

अजपा द्वारा रोगोपचार

अजपा केवल पूजा और जप का तरीका नहीं है। अजपा केवल समाधि की साधना नहीं है। अजपा सिर्फ प्राणायाम नहीं, फिर क्या है अजपा? अगर तुम्हें नींद नहीं आती हो तो अजपा 'ट्रेंक्विलाइजर' है। यदि दिल की बीमारी हो तो अजपा है 'कोरेमिन' और अगर तुम्हें सिर में दर्द है तो अजपा बनेगी 'एनासिन'। यदि तुम्हें मोटापे का रोग है तो अजपा चर्बी को जला देगी।

कहने का मतलब यह है कि अजपा रामबाण है। यह हर रोगों की अचूक दवा है, क्योंकि यह शरीर के आधारभूत तत्त्वों, क्रियाओं तथा अवयवों से सीधा सम्बन्ध रखने वाला है। जिस तरह रक्त शरीर के हर अंग, हर कोशिका तक पहुँचकर उसका पोषण करता है, उसी तरह अजपा भी मनुष्य के सब कोशों को पोषित करने वाला तत्त्व है।

एनासिन, ट्रेंक्विलाइजर, कोरेमिन इत्यादि केवल शारीरिक उपचार करते हैं। जहाँ एक अंग के रोगों की ये दवा होती हैं, वहाँ दूसरे अंगों पर भी उनका असर होता है, जहाँ उसकी जरूरत नहीं है। इन दवाओं से रोग में तत्काल फायदा तो होता है, परन्तु रोगों के मूल कारण दूर करने में वे असमर्थ होती हैं। बीमारियों का केवल शारीरिक कारण नहीं होता, बल्कि मनोवैज्ञानिक कारण भी होता है। किन्तु मानसिक कारणों के उपचार का तरीका डॉक्टरों को नहीं मालूम और न वे प्रयोग करते हैं।

रोगों का कारण मनुष्य की अतृप्त इच्छाएँ भी रहती हैं, जिनकी पूर्ति एवं निराकरण का साधन न डॉक्टरों के पास है, न घरवालों के पास और न समाज के

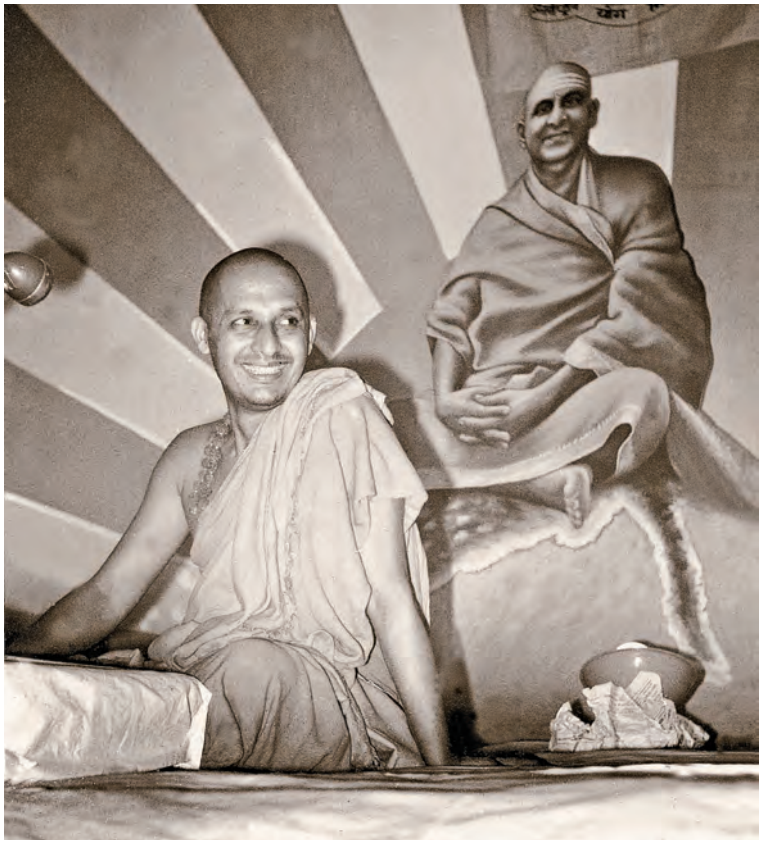

पास। पुन: रोग का कारण मनुष्य के मानसिक विकार—काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ होते हैं। इसके लिए कोई उपाय और उपचार दुनिया के पास नहीं है। प्राणमय कोश और मनोमय कोश के विकारों को एलोपैथिक, आयुर्वेदिक और होम्योपैथिक दवाएँ दूर करने में असमर्थ हैं। कुछ हद तक शरीरोपचार से मानसोपचार हो सकता है, किन्तु यह सीमित है। मन को नियन्त्रित करने के लिए और पुन: मन की शक्ति ऊर्ध्वगामी करने के लिए दवाएँ काफी नहीं हैं।

चूँकि बीमारियों का कारण प्राय: मानसिक होता है, इसलिए मन में ही बीमारियों का संस्कार पहले आरोपित होता है। अत: मन का ही उपचार सब दवाओं से पहले होना चाहिए। अजपा का प्रयोग इसलिए बीमारियों में किया जाना चाहिए। रोग होने के पूर्व अभ्यास होना ही चाहिए, किन्तु रोग होने पर भी अजपा का अभ्यास सबसे पहले शुरू कर देना चाहिए। जो संसारी और गृहस्थ मनस-तत्त्व को नहीं पहचानते और आलोचना करते हैं, उन्हें सबसे पहले अजपा के प्रायोगिक क्षेत्र में

उतरना चाहिए। अजपा का ठीक ढंग से और पूरी तत्परता के साथ अभ्यास करने से यह कभी नहीं हो सकता है कि रोग अच्छा न हो।

उपचार के रूप में मैं अजपा का असंख्य बार प्रयोग कर चुका हूँ। बड़ी और छोटी अनेक बीमारियों में मैंने अजपा का अभ्यास करा कर उन्हें दूर कराया है। पागलपन और हिस्टीरिया में मैंने अजपा के प्रयोग कई बार किए हैं। मैंने उच्च रक्तचाप और थ्रॉम्बोसिस में अजपा का प्रयोग कराया है और सभी जगह मुझे सफलता ही मिली है। जिसने भी तत्परता से थोड़ा भी अभ्यास किया, उसे सफलता मिली और वह चंगा हो गया। अजपा के अभ्यास से सैकड़ों ने जीवन में नया मोड़ पाया है।

तर्क करने वाले प्रश्न करेंगे कि एक ही साधन सब बीमारियों में कैसे? उत्तर यह है कि शरीर की बनावट और तत्त्व एक ही हैं, प्राणशक्ति के द्वारा ही शरीर चलता, बोलता, खाता-पीता और सोता है। मनुष्य दवाइयों से नहीं, बल्कि प्राणशक्ति के प्रवाह से चंगा होता है। अजपा के द्वारा प्राणशक्ति अधिक मात्रा में शरीर में प्रविष्ट होती है और इसे शरीर में ज्यादा-से-ज्यादा भरने से मनुष्य की आयु लम्बी होती है।

प्राणशक्ति हर आदमी के शरीर में बहती रहती है। जिनमें यह शक्ति अधिक मात्रा में होती है, वे स्वस्थ, प्रसन्न, शान्त और सौम्य दिखते हैं। उनके पास बैठने से रोगियों को बहुत आराम मिलता है। रोगी के शरीर में प्राणशक्ति आवश्यकता से बहुत कम होती है, इसलिए वे दुर्बलता और पीड़ा का अनुभव करते हैं। शरीर में जीवनी शक्ति को आपूरित करने का रास्ता है, अजपा का नित्य अभ्यास। अजपा का अभ्यास अधिक-से-अधिक मात्रा में करने से जीवनी शक्ति का संग्रह और संचार होता है। यह जीवनी शक्ति ही रोगों में उपचार का काम करती और प्राणदान देती है।

अजपा मन का भी इलाज करता है। मन को नियंत्रित करने और सूक्ष्म में प्रवेश कराने का एक ही द्वार है, 'अजपा नामक श्वासों की सुरंग'। चेतना, प्राण और मन को संयुक्त करने से अजपा बनता है। अजपा प्राणों के सहारे चलता है। प्राण से मन संचालित होता है। इसलिए अजपा करने से मन का स्वत: संयम भी होता है और उसके तत्त्व भी बदलते हैं। अजपा से मन और चित्त का पुराना तत्त्व एकदम बदल जाता है और नये तत्त्व आपूरित हो जाते हैं।

मैं निष्काम हूँ। कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसके लिए मैं लालसा करता हूँ, या पाना चाहता हूँ। जीवन में मुझे किसी वस्तु का अभाव नहीं है। मुझे कुछ भी कर्म करने की आवश्यकता नहीं है। केवल आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए मैं आता हूँ, घूमता हूँ और बातें करता हूँ।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सत्यम् की झाँकी

डॉ. धर्मदास मिश्र, छत्तीसगढ़

इस नश्वर संसार में वह मनुष्य कितना अभागा है जिसे किसी का प्यार न मिला हो। इससे भी अधिक अभागा तो वह है जो प्यार की गंगा के तट पर पहुँचकर प्यासा लौट जाए। जहाँ स्वार्थवश भाई, भाई का सगा नहीं, जहाँ हिंसा का तूफान हृदय में हिलोरें मारता हो, जहाँ विश्वास नहीं, परन्तु प्रेम की दुहाई दी जाती हो, जहाँ नम्रता न हो, परन्तु कुल की प्रतिष्ठा का दंभ बघारा जाता हो, जहाँ सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो, उस अंधकारमय नगरी में उलूकों की कर्कश ध्वनि के सिवाय क्या सुनने को मिल सकता है? कुछ ऐसी ही परिस्थिति में मुझे अपने गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द महाराज की, जिन्हें हम 'सत्यम्' का साक्षात् स्वरूप मानते हैं, प्रथम झाँकी का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संयोगवश, ज्ञान ज्योति का प्रकाश लेकर वे हमारे ग्राम रायपुर कर्चुलियान पधारे। यह सन् 1957 की घटना है।

काम, क्रोध तथा लोभ–इनमें से एक-एक अनर्थ के मूल हैं। इनमें लोभ की विडम्बना विचित्र है। लोभी इस संसार में किसी से नहीं डरता। उसे यदि भय रहता है तो मृत्यु का। यही कारण है कि वह जन्मजात कायर होता है। वह आशिक मिजाज तो होता है, मगर हमेशा घबराया रहता है।

भयग्रस्त जीवन के समाने सदा यह प्रश्न उठता रहता है कि 'मरने के बाद क्या होता है?' पुनर्जन्म होता है या नहीं? ईश्वर क्या है और कहाँ है? कुछ इसी प्रकार के प्रश्नों की झड़ी लग गयी जब मुझे अपने गुरुदेव के दर्शन हुए। अज्ञान अपने तर्क तथा वादविवाद में ज्ञान के पीछे नहीं रहना चाहता। पर ज्ञान के प्रकाश के समक्ष उसका अस्तित्व ही विलीन हो जाता है। यह स्थिति बड़ी विकट और कष्टदायी होती है।

एक दिन की बात है, गुरुदेव का विराट् स्वरूप देखने को मिला। अनन्त प्रकाश देखकर आँखें चकाचौंध हो गईं। उसी अनन्त प्रकाश से एक दीप्तिमान् आभा निकलती दिखाई दी। वह आभा सहज रूप से दर्शकों की भीड़ में लुप्त हो गई। फिर कहना क्या था, सम्पूर्ण ग्राम आलोकित हो गया। प्रत्येक घर में उस आलोक का प्रवेश हो गया। अज्ञान के प्रहार से मूर्छित ग्राम के सारे उद्योग-धन्धे उठ खड़े हुए। उन्हें जीवन-दान मिला। निष्क्रिय जीवन में नव जीवन का संचार हुआ। उपेक्षित जीवन को स्नेह मिला, अछूतों को त्राण मिला। विद्यालय खुले, चिकित्सालय खुले। ज्ञानोदय हुआ। धरती माता अपने कर्मवीर पुत्रों को देखकर

हर्षित एवं प्रफुल्लित हो उठी। इस आत्मशक्ति के चमत्कार को देखकर राज-सत्ता स्वागत के लिए दौड़ पड़ी। महात्मा गाँधी कहा करते थे कि चर्खा सूर्य है, शेष सारे धन्धे सितारे हैं। उस सूर्य और सितारे को निकट से देखने का सौभाग्य हम लोगों को गुरुदेव की कृपा से प्राप्त हुआ।

आगे फिर क्या हुआ? सत्यम् की ज्योति से एक ज्योति अकस्मात् मिली। सन्त प्रवर विनोबा जी का इस ग्राम में पदार्पण हुआ। गुरुदेव की अनुमति से चर्खा सहयोग समिति का उद्घाटन बाबा के कर-कमलों द्वारा होने का निश्चय किया गया। बाबा को उद्घाटन वगैरह में जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। उन्हें इस काम के लिए राजी करना आसान नहीं था। सारे प्रयास विफल हो चुके थे। हम सब हताश हो चुके थे। गुरुदेव भी ऐसे चुप थे मानो सब कुछ करते हुए भी अकर्ता हों। अनासक्ति का वास्तविक रूप विराजमान था।

मेरी गिड़गिड़ाहट और उलाहना से द्रवीभूत होकर एक लिखित आत्म निवेदन बाबा को देने का आदेश गुरुदेव ने दिया। मेरी परेशानी को गुरुदेव जानते थे। गुरुदेव ने सरल मुस्कान के साथ आत्म निवेदन लिखकर मेरे सामने फेंक दिया। उस आत्म निवेदन के अन्त में मैंने एक वाक्य जोड़ दिया कि 'इस ग्राम में जो कुछ भी निर्माण कार्य हो रहा है वह सब पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी की प्रेरणा स्वरूप है।' गुरुदेव मेरी इस धृष्टता पर नाराज हुए। पर मुझे उनका स्नेह मिल चुका था, इससे मैंने उनकी नाराजगी की तनिक भी परवाह नहीं की। आत्म निवेदन पूज्य विनोबा जी को दिया गया। बाबा अति प्रसन्न मुद्रा में बोले, 'अब मैं अवश्य श्रीगणेश करूँगा। यही तो मैं चाहता हूँ।' धूमधाम के साथ समिति का उद्घाटन हुआ। सब लोग आश्चर्यचकित रह गये, उद्घाटन के पहले ही गुरुदेव अपने प्रोग्राम के अनुसार गाँव से चले गये थे!

निद्रा भी साधना बन सकती है

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'योग साधना' से उद्धृत

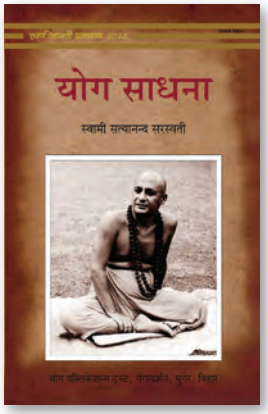

दिन-रात तुम जो भी कार्य करते हो, उसे तुम साधना का अंग बना सकते हो। कार्य छोटा हो या बड़ा, महत्त्व का हो या बिना महत्त्व का, सभी को तुम जीवन की साधना बना सकते हो। इस तरह प्रत्येक कार्य समाधि का साधन बन सकता है। और तो और, तुम निद्रा को भी आत्म-साधना में बदल सकते हो। जो यह कहते हैं कि मुझे साधना, अभ्यास, भजन-पूजन आदि के लिये समय नहीं है, वे रात्रि में सोते समय भी साधना कर सकते हैं। सोने के समय का भी दुहरा उपयोग किया जा सकता है। यह साधना योगनिद्रा की है, जिसका प्रशिक्षण मैं बिहार योग विद्यालय में स्वयं देता हूँ।

स्वप्नों का आना बड़ा अच्छा है, किन्तु उपयोगी स्वप्न तुम्हें तभी आयेंगे जब तुम एकाग्रता की सीढ़ी से सूक्ष्म की भूमि में उतरोगे। वैसे निद्रा तभी आती है जब चित्त एकाग्र होता है। शारीरिक श्रम के उपरान्त चित्त क्षणों में एकाग्र होता है। किसी ध्वनि या शब्द को ध्यानपूर्वक सुनने से चित्त एकाग्र होता है। किसी वस्तु को भी ध्यानपूर्वक देखने से चित्त एकाग्र होता है। और जैसे ही चित्त एकाग्र होता है वैसे ही नींद की प्रतिक्रिया होती है। झट तुम्हें नींद आयेगी। यही कारण है कि बहुत शारीरिक श्रम या दौड़-धूप करने के बाद नींद आती है। सत्संग, कथा, प्रवचन या रेडियो संगीत सुनते-सुनते नींद आ जाती है। ध्यानपूर्वक कोई काम करने या पढ़ने से नींद आ जाती है। जब नींद आती हुई मालूम पड़ती है तब चित्त को छोड़कर नींद की दुनिया में चले जाना अच्छा लगता है। परन्तु यह तरीका अच्छा नहीं है। किसी शब्द, ध्वनि या क्रिया पर चित्त एकाग्र करते हुए सोने का अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करने से तामसिक निद्रा, अज्ञान की निद्रा नहीं आयेगी, बल्कि ऐसी निद्रा आयेगी जिसमें शरीर को तो विश्राम मिलेगा ही, अन्तर का ज्ञान भी जगा रहेगा। बाहर की नींद और अन्दर की जाग, यही सिद्धि की पूर्णता है और समाधि का रहस्य है।

ऐसे समय चित्त को श्वास, मन्त्र और त्रिकुटी पर एकाग्र करो। इस तरह से जब तुम सोने का अभ्यास करोगे तो जप के माध्यम से तुम निद्रा के समय की चेतना को पकड़कर रख सकोगे। इस प्रकार से चित्त की भूमि में उतरने पर तुम्हें यथार्थ और सारपूर्ण स्वप्न आयेंगे।

स्वप्नों के विश्लेषण द्वारा तुम अपने व्यक्तित्व के दोषों से अवगत हो सकते हो। किसी रोग के इलाज के पूर्व उस रोग के विषय में जानकारी जरूर ली जाती है। रोग के कारण का पता लगाया जाता है। रोग के कारण का पता लगने पर उसका उपचार किया जाता है, न कि रोग के लक्षणों का। यदि ज्वर है तो ज्वर की दवा नहीं होती, बल्कि जिस कारण से ज्वर होता है, उस कारण का उपचार होता है। इसलिये सबसे पहले तुम्हें अपने व्यक्तित्व की खामियों को जानना चाहिये और जानकर उसे दूर करने में सचेष्ट हो जाना चाहिये।

परन्तु अपने व्यक्तित्व को स्वयं जानने का तुम्हारे पास कोई उपाय नहीं है। तुम अपनी बुद्धि से नहीं जान सकते कि तुम्हारे चित्त में कौन-कौन से संस्कार भरे पड़े हैं। तुम्हें स्वयं नहीं मालूम कि तुम्हारे अन्दर कौन-कौन सी इच्छाएँ, भय, उद्वेग आदि एकत्र हैं। मनुष्य अपने को बहादुर समझता है, परन्तु ऐन मौके पर उसमें कायरता आ जाती है। तुम अपने को धैर्यवान् समझते हो, पर समय आने पर धीरज खो बैठते हो। तुम ईश्वर पर विश्वास रखते हो, पर परीक्षा के समय उस विश्वास पर अड़े नहीं रह पाते। तुम अपने को ठीक-ठीक और पूरा-पूरा नहीं जानते। यदि जान पाते तो रोग, दु:ख, चिन्ता आदि से पीड़ित नहीं होते। तुम्हारे अन्दर जन्मजात या संस्कारगत क्या-क्या गुण और दोष हैं, इनका जानना तुम्हारे लिए बुद्धि द्वारा सम्भव नहीं है। तुम जाग्रत अवस्था में हमेशा चिन्तन के द्वारा बात को समझना चाहते हो। परन्तु बुद्धि की एक सीमा है, जिसके परे वह एकाएक नहीं जा सकती। बुद्धि 'क्यों' और 'कैसे' से सम्बन्ध रखती है, पर दुनिया की बहुत-सी बातों के क्यों और कैसे का पता नहीं लग सकता है। ऐसा है और होता है, इतना भर ही मालूम है।

आन्तरिक व्यक्तित्व को जानने के साधन केवल दो हैं—स्वप्न और ध्यान। स्वप्नों के अध्ययन के अधिकारी, यानि योगविद्या के आचार्य, मनुष्य की सुप्त आकांक्षाओं, दबी वासनाओं की जानकारी प्राप्त कर भौतिक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक व्यथाओं और दुर्बलताओं को दूर करते हैं।

स्वप्न के विषय में तुमने पढ़ा होगा कि वे निरर्थक नहीं हैं। तुम स्वप्न में अपनी ही सृष्टि को देखते हो और उसका आनन्द लेते हो। स्वप्न का निर्माण तुम स्वयं करते हो। स्वप्न एक वरदान है, स्थूल चेतना को सूक्ष्म चेतना से जोड़ने का साधन है। स्वप्न निर्माण किसी भौतिक वस्तु के पीछे नहीं होता। यह पूर्णत: सूक्ष्म का विभाग है, तो भी उसकी स्मृति, चेतना और ज्ञान भौतिक जगत् में तुम्हें बराबर बना रहता है। रात्रि में तुम जो कुछ देखते हो, उसकी याद लेकर तुम सुबह जागते हो। यह बड़े आनन्द और उपयोग की चीज है, नहीं तो निद्रा भी हमारे लिये निरर्थक होती।

वास्तव में निद्रा और स्वप्न तुम्हें स्वच्छ शरीर में प्रवेश कराते हैं। निद्रा तभी आती है जब मन एकाग्र होता है, चित्त एकाग्र होता है। सूक्ष्म लोक की चीजों को जाग्रत अवस्था में नहीं देखा जा सकता। निद्रा में जाते-जाते चित्त एकाग्र होता है

और इस एकाग्र अवस्था में जिस किसी वस्तु की ओर उसका ध्यान जाता है, उसी वस्तु का पूरा विवरण या रूप चित्त के सामने प्रकट होता है। इससे जन्म-जन्मान्तर का भी चित्र सामने आता है। जिस प्रकार गर्मी में सारी घास जल जाती है, ऊपर से कहीं हरियाली नहीं दिखती, किन्तु वर्षा के साथ जमीन में दबी हुई घास की जड़ें पनपकर फिर हरी हो जाती हैं, उसी तरह तुम अपने अनेक जन्मों की स्मृति काल के चक्कर से खो देते हो, किन्तु जब कभी तुम्हारा चित्त एकाग्रता के माध्यम से गहरी भूमि में उतर पड़ता है तब तुम्हें पुरानी पिछली घटनाओं के दृश्य भी यदा-कदा दिखते हैं।

चित्त में अनेकानेक अनुभव संचित रहते हैं। ये अनुभव केवल एक ही जन्म के नहीं, बल्कि अनेक जन्मों के सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते हैं। पूर्व जन्म की स्मृति हर एक को आ सकती है यदि वह तीन बातों का अभ्यास करे। प्रथम, वैराग्य का, अर्थात् सुख और दु:ख दोनों से अप्रभावित रहने का। दूसरा, एकाग्रता का। तीसरा, किसी एक साधना द्वारा मन पर पड़ते जाने वाले प्रतिदिन के संस्कारों को क्षय करने का तरीका जान लेने से।

यदि प्रतिदिन के संस्कारों को चित्त में जाने से रोका जाय तो संस्कार की अनेक तहें नहीं जमने पायेंगी। साथ-साथ नित्य ध्यान के अभ्यास द्वारा पिछले अनेक संस्कारों को धीरे-धीरे हटाते जाना भी जरूरी है। जब तक ऊपर से इस जन्म में प्राप्त भावों को हटाया नहीं जायेगा तब तक पूर्व जन्म प्रकट नहीं होगा।

जब कोई वस्तु तुमसे खो जाती है तो उसे ढूँढने के लिये तुम उस वस्तु से सम्बन्धित प्रत्येक घटना को याद करते हो, कोई सूत्र खोजने की कोशिश करते हो जिसके माध्यम से उस वस्तु को तुमने कहाँ रख दिया है, यह याद करने का

प्रयत्न करते हो। मान लो, यदि तुम्हारा पर्स खो गया है, तो तुम सोचने का श्रम करते हो कि उस पर्स को लेकर तुम कहाँ-कहाँ गए थे, क्या-क्या काम किया था, या कब तक वह पर्स तुम्हारे पास था। यह विचार सूत्र की तरह आगे बढ़ता जायेगा। एक विचार के बाद उसी से सम्बन्धित पुन: दूसरा विचार आयेगा। दूसरे विचार से सम्बन्धित पुन: तीसरा विचार आएगा, तीसरे से चौथा और इसी प्रकार के चिन्तन क्रम से अन्त में तुम घटना की तह तक पहुँच जाओगे।

इसी प्रकार प्राय: स्वप्न में होता है। स्वप्न एक ऐसी स्थिति है जहाँ कोई भी विचार तुरन्त रूप धारण कर लेता है। जिस ओर मन की वृत्ति गयी, उसका रूप बन जाता है और चूँकि हमारी वृत्ति सदा स्थिर नहीं रहती, इसलिये जल्दी-जल्दी स्वप्न के पात्र, चित्रादि बदलते रहते हैं एवं उनमें क्रमबद्धता नहीं रहती। यदि चित्त स्वप्न में एक ही वृत्ति को कुछ काल तक पकड़े रहे तो स्वप्न में भी घटनाएँ क्रम के साथ दिखेंगी। कुछ लोगों के साथ प्राय: ऐसा होता है।

पानी के ऊपर की काई जैसे जल को ढके रहती है, उसी प्रकार तुम्हारी इन्द्रियों के नीचे अनन्त ज्ञान और अनुभव छिपा हुआ रहता है। इन्द्रिय चेतना के पर्दे को हटा देने पर तुम्हें दिव्य चेतना की प्राप्ति होगी। स्वप्न में प्राय: मन के अन्तर्मुख हो जाने से भौतिक जगत् की चेतना लुप्त हो जाती है और संस्कारों की पोटली खुल जाती है। अनेक अनुभवों का दिग्दर्शन स्वयं तुम्हारा मन करता है।

चित्त एक स्टोर हाऊस है, जिसपर ताला लगा हुआ है। हर समय तुम यह नहीं जान सकते कि उस भण्डार घर में क्या-क्या है। इसे ही चित्रगुप्त का खजाना कहते हैं। अनेक गुप्त चित्र तुम्हारे अन्त:करण में हैं, जिसका पता तुम्हारे परम कुशल मैनेजर मन और बुद्धि को भी नहीं है। किन्तु एकाग्रता की पैनी धार से इस भण्डार

का दरवाजा थोड़ा खुलता है और उसके कुछ अनुभव स्वप्न में प्रकट होते हैं। इन अनुभवों को केवल द्रष्टा के रूप में देखना चाहिये। उनके साथ अपने को एक नहीं समझना चाहिये। एक समझने पर तुम उनमें उलझकर वहीं-के-वहीं रहोगे, किन्तु यदि अपने को उनसे अलग कर लोगे तो उन्नति के पथ पर अग्रसर होओगे।

स्वप्न में दबी इच्छाएँ सांकेतिक रूप में स्पष्ट होती हैं। इच्छाओं के अलावा स्वप्न में एकाग्रता के माध्यम से सुदूर पूर्व की बातें स्पष्ट होती हैं। बहुत गहरी नींद में मन कुछ ऐसे-ऐसे स्वप्न देखता है जिनका सम्बन्ध तुम्हारे पूर्व जन्मों से होता है। यहाँ पर मैं इस विवाद में नहीं जाना चाहता कि पूर्व जन्म होता है या नहीं। अधिक विस्तार में न जाकर मैं केवल तुम्हें यह बतलाना चाहता हूँ कि स्वप्न में कभी-कभी तुम्हें अनदेखे चेहरे, अनदेखे स्थान, अनदेखी घटनाएँ भी दिखती हैं। वर्तमान जीवन से उनका कोई सम्बन्ध न होते हुए भी वे पात्र, स्थान, घटनाएँ तुम्हें परिचित-से मालूम पड़ते हैं। तुम्हें लगता है जैसे तुम उन्हें पूर्व से जानते हो। जब स्वप्न में ऐसा भाव मालूम पड़े तो समझना चाहिए कि उसका सम्बन्ध जरूर तुम्हारे किसी अन्य जीवन से है।

इस प्रकार के स्वप्न प्राय: बार-बार आते हैं। एक ही मकान या व्यक्ति बार-बार उसी रूप में दिखता है। इस प्रकार का दृश्य सिनेमा के रील की तरह स्वप्न में तुम्हारे सामने गुजरता है। एक लड़की को एक बड़े महल का सपना बारम्बार आता है। एक प्रोफेसर एक नगर में जीवन में पहली बार गये, परन्तु उसकी सड़कें, मकान इत्यादि उन्हें बिल्कुल जाने-पहचाने से मालूम पड़े। उन्हें मालूम पड़ा कि कई बार उन्हें इस स्थान के सपने आये हैं। एक बड़े मकान के दरवाजे, कमरे, सब उनके जाने हुए मालूम पड़े। उन्होंने अपनी माँ, दीदी, दादी सभी से पूछा कि क्या वे बचपन में कभी उस शहर में गये और रहे थे, तो मालूम पड़ा कि नहीं, वे लोग कभी वहाँ नहीं गये थे।

इसी तरह की असंख्य घटनाएँ हैं। जिन धर्मों में पुनर्जन्म नहीं मानते हैं, वहाँ भी लोगों के जीवन में कुछ ऐसी बातें घटी हैं जिससे उन्हें पूर्व जन्म का साक्ष्य और प्रमाण देना पड़ा है। विज्ञान ने आज लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रखा है। इसीलिये आज इन विद्याओं की ओर से मनुष्य का ध्यान हटा-सा मालूम पड़ता है, किन्तु इससे सत्य के अस्तित्व में अन्तर कैसे आ सकता है?

जिस तरह वर्षों पुरानी स्मृति को भी तुम एकाग्र चिन्तन से जाग्रत कर सकते हो, उसी प्रकार अपनी चेतना को धीरे-धीरे गहराई में उतारते-उतारते पूर्व जन्मों की स्मृति भी जाग्रत कर सकते हो। योग का अभ्यास करने वाले साधकों के जीवन में पूर्व जन्म के दृश्य आदि स्वप्न और ध्यान की अवस्था में प्रकट होते हैं। जैसे गर्मियों में साँप का कहीं पता नहीं होता, किन्तु वर्षा में उनके बिलों में पानी भर जाने से वे बाहर निकलकर पृथ्वी में फैल जाते हैं, उसी तरह जब चित्त के संस्कारों का ध्यान-योग द्वारा नाश किया जाता है तो कभी दबे हुए संस्कार,

स्मृतियाँ, व्यक्तित्व के दोष आदि ऊपर आने लगते हैं और स्वप्न तथा ध्यान में दिखने लगते हैं। जैसे मठ्ठा को मथने पर सारा मक्खन ऊपर आता है, वैसे ही नींद में चित्त के एकाग्र होने पर अनेक दबी हुई पुरानी-से-पुरानी स्मृतियाँ स्वप्न के माध्यम से प्रकट होती हैं। यदि चित्त एकाग्र हो जाए तो उसे धीरे-धीरे अतीत की ओर ले जाओ। आगे बढ़ते-बढ़ते अपनी स्मृति यहाँ तक ताजी करो कि उसे जन्म और गर्भ की याद आ जाये। ऐसा ही अभ्यास करते-करते इस जन्म के पूर्व की बातों की भी स्मृति लाने की कोशिश करो। इस तरह का अभ्यास करके प्रत्येक व्यक्ति अच्छी याददाश्त प्राप्त कर सकता है।

योगनिद्रा को समाधि में बदलने की शिक्षा दी जाती है। गुरु शिष्य को आदेश देता है—सोओ मत, हमेशा जागते रहो। गुरु कहता है, 'बच्चे! सोना नहीं, सूक्ष्म चेतना में उतर कर विश्राम लो।' गुरु कहता है, 'सोते भी रहो और जागते भी रहो।' स्थूल शरीर को सुलाओ, पर आत्मा को जगा कर रखो। बाहर की नींद हो, पर अन्दर की जाग हो। इस प्रकार की साधना-शिक्षा गुरु से प्राप्त होती है। गुरु इस साधना में शिष्य को दीक्षित करता है। इस कला को यदि तुम विकसित करोगे तो स्वयं भी सपनों के संसार से परिचित हो सकोगे। जिस कार्य को तुम बुद्धि के सहारे जाग्रत अवस्था में नहीं कर सकोगे, उसी कार्य को स्वप्न के द्वारा तुम सिद्ध कर सकते हो। यह ऐसी विद्या है जो सतत् और दीर्घकाल के अभ्यास से सिद्ध होती है।

इसलिये स्वप्न को कभी निरर्थक मत समझो। वह तो स्थूल और सूक्ष्म की देहरी है। वह मृत्यु लोक को अन्य सूक्ष्म लोकों से जोड़ता है। वहाँ भी चेतना रहती है, परन्तु स्थूल शरीर द्वारा नहीं, सूक्ष्म शरीर द्वारा कार्य करती है। स्वप्न सिद्धि के द्वारा लोगों को अत्यधिक सहायता दी जा सकती है। स्वप्न बड़े उपयोगी हैं, परन्तु उनके प्रयोग के अनेक ढंग निकालना हम लोगों का कार्य है। प्रकृति के नियम तो सदा सर्वकाल में रहते हैं, परन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा उन्हें खोज निकालता है और प्रयोग की युक्तियाँ सोचकर उनसे जगत् का कल्याण करता है। हर युग की आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। इसलिये प्रयोग का रूप भी हर युग में बदल जाता है। प्रयोग और उपयोग के तरीके गुरु से सीखो।

प्राण विद्या

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'ईश्वर दर्शन' से उद्धृत

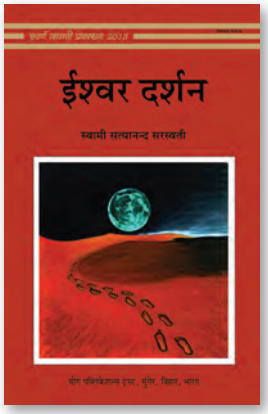

प्राण विद्या एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से आप प्राण विषयक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। प्राण का तात्पर्य जीवन शक्ति से है। यह सर्वव्यापी शक्ति है। जहाँ प्राण है वहाँ जीवन है। प्रत्येक जीवित वस्तु में प्राण है। यहाँ तक कि साग-सब्जियों में भी प्राण है। प्राण केवल आने-जाने वाला श्वास ही नहीं है, यह उससे कहीं अधिक गहन है।

प्राण विद्या ध्यान की वह विधि है जिसके द्वारा उच्चतर तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है। यह मन की उद्विग्नता को नियंत्रित कर, चेतना को हमारे अस्तित्व के गहनतर क्षेत्रों में ले जाने का एक साधन है। प्राण शरीर की एक आंतरिक शक्ति है, इसलिए प्रबल संकल्प शक्ति द्वारा प्राण को दिशा-निर्देश दिया जा सकता है। इसे एक शरीर से दूसरे शरीर में भी प्रेषित किया जा सकता है। आध्यात्मिक उपचार में प्राण विद्या का बहुत महत्त्व है।

प्राण विद्या का सम्बन्ध चेतना के विस्तार एवं प्राण की जागृति से है। तनाव, भावनात्मक द्वन्द्व, चिन्ता तथा मन सम्बन्धी अन्य समस्याओं में प्राण विद्या के अभ्यास से अत्यधिक लाभ होता है। प्राण विद्या तथा ध्यान की अन्य विधियाँ रोगों का निदान करती हैं। अनेक रोग मनोकायिक होते हैं और ध्यान के द्वारा उनका उपचार किया जा सकता है। प्राण विद्या एवं योग निद्रा मनोकायिक रोगों के उपचार में विशेष रूप से लाभदायक हैं।

प्राण विद्या के अभ्यास से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए अपने आन्तरिक शरीर का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। आपको यह ज्ञान होना चाहिए कि आपके प्रमुख अंग कहाँ पर स्थित हैं, आपकी हड्डियाँ और रक्त वाहिनियाँ कहाँ पर हैं। इसके पश्चात् जब आप प्राण विद्या का अभ्यास करेंगे तो ऐसा लगेगा मानो पूरे शरीर में अमृत का संचार हो रहा है। यह एक अद्भुत अनुभूति होगी। आप अपनी कल्पना के सहारे शरीर के प्रत्येक अंग का स्पर्श कर सकेंगे। अभी यदि आपसे अपने किसी अंग में प्राण भेजने को कहा जाए तो शायद आप ऐसा नहीं कर पायेंगे।

प्राण विद्या का अभ्यास व्यक्ति को यह सिखाता है कि वह अपनी चेतना की घनीभूत शक्ति को शरीर के विभिन्न अंगों में क्रमानुसार कैसे ले जा सकता है। इसमें और योग निद्रा के अभ्यास में कुछ समानता है। इन दोनों में अन्तर यह है कि योग

निद्रा में मन को शरीर के एक भाग से दूसरे भाग तक शीघ्रतापूर्वक घुमाया जाता है जबकि प्राण विद्या का उद्देश्य है कि चेतना को विशेष मार्गों के माध्यम से शरीर के विभिन्न केन्द्रों तक प्रवाहित होने दिया जाए। योग निद्रा प्राण विद्या के अभ्यास की तैयारी में सहायता करती है। प्राण विद्या में मन को शरीर के अन्दर होने वाले प्राणिक प्रवाह के प्रति सजग रहना सिखाया जाता है।

शरीर के अन्दर प्रवाहित होने वाले प्राण को पाँच मुख्य भागों में बाँटा गया है जिन्हें 'पंच प्राण' कहा जाता है। ये हैं प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान। प्रत्येक भिन्न-भिन्न कार्य करता है। प्राण श्वसन तथा वाक् अंगों से सम्बद्ध है तथा श्वसन प्रक्रिया को ऊर्जान्वित करता है। यह कंठ और मध्यपट के बीच स्थित होता है। अपान नाभि प्रदेश के नीचे स्थित होता है और उत्सर्जन की प्रक्रिया को उद्दीप्त करता है। समान यकृत, आंत, अग्नाशय और आमाशय जैसे पाचन तंत्र के अंगों तथा हृदय एवं रक्त-परिसंचरण तंत्र को क्रियाशील करता है और उन्हें नियंत्रित रखता है। यह हृदय और नाभि के बीच के क्षेत्र से सम्बद्ध रहता है तथा भोजन से पोषक तत्त्वों को ग्रहण करने के लिए उत्तरदायी होता है। उदान का स्थान सिर, पैरों और भुजाओं में होता है तथा यह आँख, कान, घ्राण आदि ज्ञानेन्द्रियों को क्रियाशील करता है। व्यान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है और रिज़र्व ऊर्जा का काम करता है।

अभ्यास की विधियाँ

प्राण विद्या का अभ्यास विभिन्न विधियों से किया जा सकता है। प्राण को रक्त वाहिनियों, अस्थियों, स्नायु तंत्रिकाओं, मेरुदण्ड इत्यादि के माध्यम से संचारित किया जा सकता है, अथवा प्राण को शरीर के किसी विशेष भाग में प्रवाहित और संघटित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, आप घुटनों में प्राण भेज सकते हैं और उसे वहीं पर संचारित कर सकते हैं।

जब आप प्राण विद्या का अभ्यास आरम्भ करते हैं तो कल्पना शक्ति की आवश्यकता होती है। कल्पना के माध्यम से प्राण शक्ति की सजगता विकसित की जाती है। उज्जायी प्राणायाम इसमें आपकी सहायता करेगा। प्रत्येक श्वास एवं प्रश्वास के साथ पूरे शरीर में प्राण के प्रवाह को अनुभव करने और देखने का प्रयास किया जाता है। आपको प्राण की अनुभूति झुंझुनाहट या गर्माहट के रूप में भी हो सकती है। प्राण को सूक्ष्म प्रकाश-पुंजों के रूप में भी अनुभव किया जा सकता हैं। अभ्यास के गहन और परिपक्व होने पर कल्पना की आवश्यकता नहीं रहेगी, आप प्राणों के प्रवाह को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने लगेंगे। आप शरीर के अन्दर विद्यमान सूक्ष्म नाडियों तथा प्राणिक मार्गों से स्वत: परिचित हो जायेंगे।

प्रत्येक चक्र प्राण शक्ति का केन्द्र होता है। मुख्य केन्द्र मणिपूर चक्र है जहाँ प्राण शक्ति उत्पन्न होती है। प्राणों के वितरण हेतु प्राण को आज्ञा चक्र में संचित किया जाता है। प्राण विद्या में प्राण शक्ति की जागृति के दौरान प्राण को मूलाधार चक्र से, जो प्राण का संचय स्थान होता है, आज्ञा चक्र की ओर ले जाया जाता है।

प्राण विद्या के अभ्यास में सावधान रहने की आवश्यकता होती है। यदि प्राण विद्या का उचित ढंग से अभ्यास किया जाए तो यह शारीरिक उपचार और ऊर्जा-वृद्धि की अद्‌भुत विधि है, किन्तु यदि प्राण असंतुलित हो जाएँ तो रोग उभर सकते हैं और मन भी विक्षिप्त हो सकता है। योग और आयुर्वेद के शास्त्रों के अनुसार अधिकांश रोग शरीर में प्राणों के बाधित होने के कारण होते हैं।

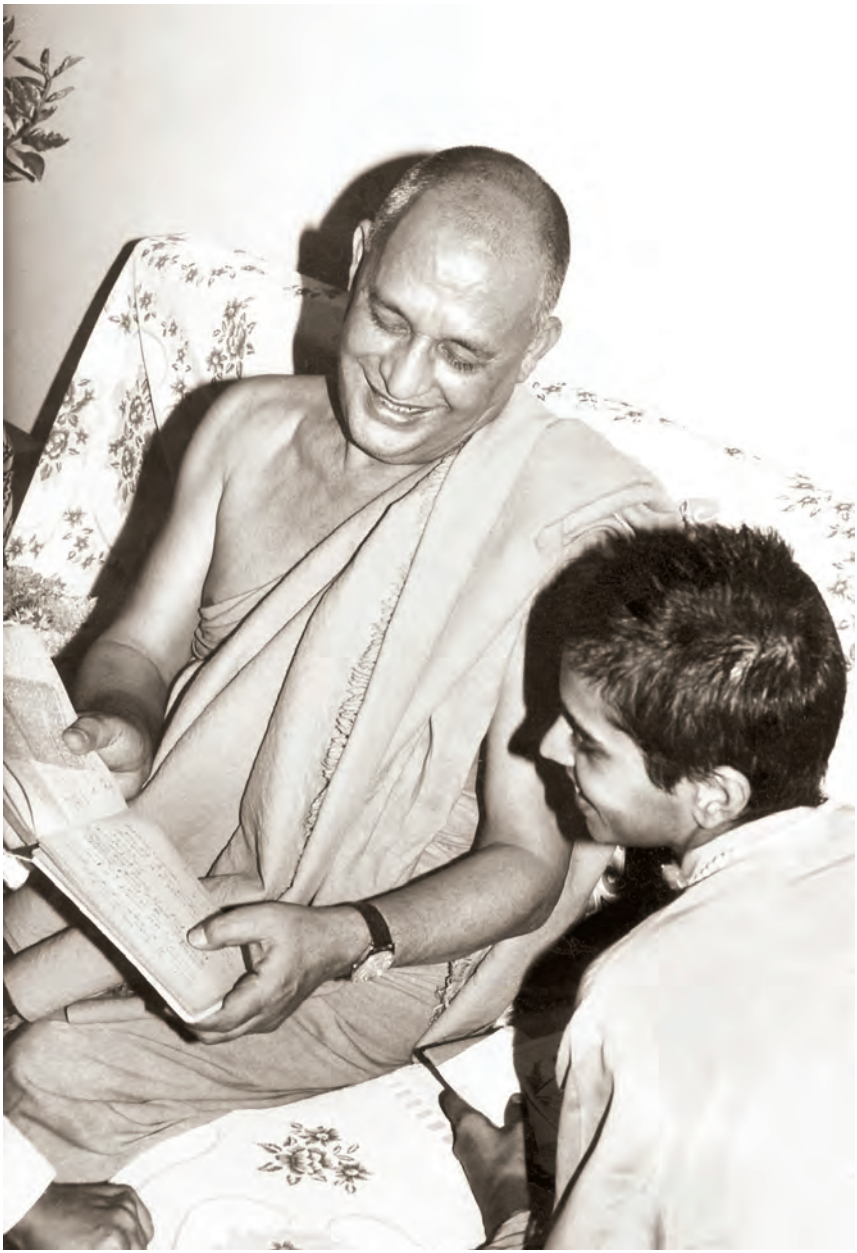

सुझाव और नियम

प्राण विद्या आरम्भ करने के पूर्व मानस दर्शन, योग निद्रा, मंत्र जप एवं अजपाजप में अधिक-से-अधिक प्रवीण हो जाएँ। सर्वोत्तम परिणाम के लिए शरीर की आन्तरिक संरचना से सम्बन्धित अपना ज्ञान वर्द्धित करें।

नियमित अभ्यास के द्वारा धीरे-धीरे प्राण की सजगता और उस पर नियंत्रण का विकास होना चाहिए। इस प्रकार की सतर्कता के द्वारा अभ्यास के क्रम में होने वाली अनपेक्षित हानि से बचा जा सकता है।

शरीर को पूर्णत: आराम की स्थिति में होना चाहिए ताकि अभ्यास के क्रम में उसे हिलाने की आवश्यकता नहीं पड़े। आप ध्यान के किसी आसन में बैठकर या शवासन में लेटकर भी अभ्यास कर सकते हैं।

अभ्यास के समय ढीले और आरामदेह वस्त्र पहनने चाहिए ताकि शरीर में कहीं कोई अवरोध या दबाव नहीं पड़े।

प्राण विद्या का अभ्यास करते समय धातु से बनी वस्तुओं को शरीर से अलग कर लें। अँगूठी, घड़ी, चश्मा, ताबीज इत्यादि का त्वचा से स्पर्श नहीं होना चाहिए।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अभ्यास समाप्त करने से पूर्व प्राण को मूलाधार में लौटा दिया जाए, अन्यथा ऊर्जा नष्ट होगी।

प्राण विद्या के अभ्यास के तुरंत बाद हिलें नहीं। आँखें खोलने के बाद धीरे-धीरे अपने आस-पास की प्रत्येक वस्तु के प्रति सजग हो जायें। पूरी तरह सजग होने के बाद ही अपने आसन से उठें।

प्राण विद्या स्वयं में एक पूर्ण साधना है। प्राण की विकसित सजगता साधक को आध्यात्मिक अनुभव दिलाती है। यह एक शक्तिशाली प्रणाली है। इसकी सिद्धि से प्रसुप्त उपचारात्मक क्षमताओं का भी विकास होता है। साधक उपचार के उद्देश्य से रोगी के अन्दर प्राणों का संचार कर सकता है। प्राण की उपचारात्मक शक्ति का प्रयोग सभी प्रकार के प्राणियों के साथ-साथ स्वयं अपने ऊपर भी किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में यह जान लेना भी महत्त्वपूर्ण है कि प्राणिक उपचार का उपयोग स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे आध्यात्मिक जागृति में बाधा उत्पन्न होती है, जो प्राण विद्या का मुख्य उद्देश्य है।

रॉकेट की तरह चलो, लीडर की तरह बोलो, नेपोलियन की तरह सोओ, जीवन-मुक्त की तरह जगत् में रहो और आँधी की तरह छेद-छेद खोजो। स्वतंत्र, स्पष्ट, निर्भय और अगुवा बनो, जैसे एक ईश्वरीय सिपाही।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

गुरु कृपा

संन्यासी कृष्ण चरण, जमशेदपुर

सन् 1980 के अगस्त माह में एक महीने के योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र में भाग लेने के लिये मैं जमशेदपुर से मुंगेर आया। उस समय गंगा दर्शन का निर्माण नहीं हुआ था और सभी कार्यक्रम शिवानन्द आश्रम में होते थे। पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी एक छोटे-से कमरे में रहते थे। हमलोगों को रहने के लिए एक हॉल में जगह मिली थी। मेरे जीवन में किसी आश्रम में रहने का यह पहला अनुभव था। रात्रि का भोजन संध्या छः बजे तक कर लेना और भोजन के बाद विदेशी संन्यासियों द्वारा मीठे स्वर में कीर्तन करना—इसने हमें आश्चर्य में डाल दिया।

आश्रम के नियमानुसार रात्रि आठ बजे हमलोग दरवाजा बन्द करके सो गये, लेकिन पंखा चल रहा था। अचानक बाहर से किसी के द्वारा स्विच ऑफ करने की आवाज आई और पंखा बन्द हो गया। चूँकि घर में पंखे में रहने की आदत थी इसलिए थोड़ा गुस्सा भी आया। दरवाजा खोला तो सामने श्री स्वामीजी खड़े थे। उन्हें देखकर मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी और मैं उनके चरणों में नतमस्तक हो गया। उसके बाद एक माह के प्रशिक्षण की अवधि में हमलोगों ने कभी पंखा नहीं चलाया।

हम सब को स्वामी गोरखनाथ जी एवं स्वामी दयानन्द जी द्वारा एक महीने तक गहन योग प्रशिक्षण दिया गया। सत्र के अन्त में दीक्षा का कार्यक्रम था। साठ प्रशिक्षुओं में सोलह व्यक्तियों का नाम दीक्षा के लिये चयनित हुआ था, जिनमें मैं भी था। श्री स्वामीजी अपने कमरे में चौकी पर बैठे थे और बारी-बारी से दीक्षा दे रहे थे। मेरी बारी आयी तो मैं उनके सामने चटाई पर बैठ गया। श्री स्वामीजी ने हमारे घर की परिस्थिति, पूजा-पाठ एवं अन्य समस्याओं के बारे में पूछा। उस समय मेरे सामने सबसे बड़ी समस्या जमशेदपुर में रहने की थी। हमारा एक बड़ा संयुक्त परिवार था और मेरी चाची दो घर होते हुये भी हिस्सा देना नहीं चाहती थी। इसलिए मैंने श्री स्वामीजी से कहा कि मैं अपनी चाची पर मुकदमा करना चाहता हूँ। श्री स्वामीजी ने कहा, 'झगड़ा मत करो। जाओ, सब ठीक हो जायेगा।'

श्री स्वामीजी से आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद मैं जमशेदपुर लौटा। दो वर्षों के अन्तराल में एक विचित्र घटना घटी। जमशेदपुर में एक नेचुरोपैथी सेन्टर है जो टाटा कम्पनी के अन्तर्गत चलता है। वहाँ एक योग शिक्षक की आवश्यकता थी और उस समय मैं जमशेदपुर में अकेला योग शिक्षक था। अतः टाटा स्टील के मैनेजिंग

डायरेक्टर के आदेशानुसार मेरा टाटा-रॉबीन्स-फ्रेजर कम्पनी से टाटा स्टील में उच्चतर पद पर तबादला कर दिया गया और रहने के लिए कम्पनी का क्वार्टर भी मिल गया। गुरु कृपा से मेरा तो कष्ट ही दूर हो गया और प्रसन्नता से मेरे आँसू छलक पड़े।

फिर भी मैं सोच रहा था कि क्वार्टर तो रिटायरमेन्ट के बाद कम्पनी ले लेगी, तब कहाँ रहूँगा? इसलिए मैंने जमीन लेकर अपना घर बनाना चाहा। परन्तु मेरे पास पैसे नहीं थे। मैंने अपनी भविष्य निधि से पैसे निकालकर करीब तीन कट्ठा जमीन खरीद ली और कम्पनी में ऋण के लिए आवेदन दे दिया। उस समय कम्पनी द्वारा घर बनाने के लिये तीन लाख रुपया ऋण दिया जाता था। परन्तु ऋण मिलने में एक वर्ष से ज्यादा समय लग जाता था। आवेदन देने के बाद जब संबंधित अधिकारी से मिलने गया, जो एक महिला थी, तो वह मुझे देखकर खड़ी हो गयी और मुझे कुर्सी पर बैठने के लिये आग्रह किया। मैं कुछ सोचता, इससे पहले उसने कहा, 'सर, मैं आपकी शिष्या हूँ। चार वर्ष पूर्व आपने हमें योग सिखाया है। हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं?' मैंने ऋण के लिए जो आवेदन दिया था, उसके बारे में बताया तो उसने कहा, 'छः माह के अन्दर आपका पैसा मिल जायेगा।'

घर का नक्शा बनाने के लिये टिस्को के आर्किटेक्ट, जितेन्द्र सिंह को दिया और उन्होंने बना भी दिया। जब हम नक्शा बनाने का पैसा देने लगे तो वे हमसे बोले, 'आपने मेरी पत्नी और बेटी को योग सिखाया है, इसलिए पैसा नहीं ले सकता।'

नक्शा पास कराने के लिए नोटीफायड एरिया कमीटी में जमा किया तो वहाँ के बड़े बाबू ने हमें बुलाया और कहा, 'सिंह बाबू, हमें मालूम है आप जमशेदपुर के एक अच्छे योग शिक्षक हैं। हमें दमा की शिकायत है, आप हमारा इस सम्बन्ध में मार्ग दर्शन करें।' बिना दौड़-धूप के, बिना खर्च किये घर का नक्शा पास हो गया और मेरा घर बनकर तैयार हो गया।

क्या आप इसे गुरु-कृपा नहीं कहेंगे? जी हाँ, यह गुरु-कृपा ही तो है। इसलिये स्वामी निरंजनानन्द जी ने इस घर का नाम भी गुरु-कृपा ही रखा है। मेरी स्थिति तो सुदामा जैसी हो गयी, क्योंकि श्री स्वामीजी ने दीक्षा देते समय कहा था, 'सब ठीक हो जायेगा।' आज इसी घर में सत्यानन्द योग केन्द्र का कार्यालय है जहाँ से जमशेदपुर में योग का सारा कार्यक्रम संचालित होता है।

मानसिक समस्याओं का निराकरण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'तन्त्र, क्रिया और योगविद्या' से उद्धृत

सामान्य तौर से आंतरिक मानसिक समस्याओं की अभिव्यक्ति वर्तमान से असंतोष के रूप में होती है। यह एक-दो व्यक्तियों का किस्सा नहीं, प्राय: हर व्यक्ति के जीवन में ऐसा होता है। आप वर्तमान को कितनी पूर्णता से जीते हैं? वास्तव में यदि आप पूरी ईमानदारी से इस प्रश्न का उत्तर दें तो पायेंगे कि आप अधिकांशत: दिवा-स्वप्नों में या अतीत की यादों में खोये रहते हैं। दैनिक जीवन में प्राय: ऐसा ही होता है। जब आप सुबह अपने काम के लिए जाते हैं तो रास्ते में चलते-चलते नरम बिस्तर में सुखद नींद की कल्पना करते हैं। जब आप दफ्तर में काम करते हैं तो छुट्टी या दोस्तों के साथ गप्पबाजी के ख्याल में डूबे रहते हैं। बगीचे में काम करते समय आपको पिछले रविवार को घर में बने स्वादिष्ट भोजन का ख्याल आता है और आप उसके स्वाद में डूबे रहते हैं। जब आप भोजन करते हैं तो अपनी व्यवसाय संबंधी समस्या या यात्रा संस्मरण में व्यस्त रहते हैं।

वर्तमान में जीना

कहने का तात्पर्य यह कि बहुत कम ही ऐसा होता है जब व्यक्ति अपने वर्तमान क्रियाकलापों में एकाग्रता से लीन होता है। यही कारण है कि अधिकांश लोग अपने कार्य को अधूरे मन से करते हैं। न तो उनके मन में उत्साह होता है और न ही कार्य के प्रति लगन। जब मन कहीं और भटक रहा हो तो काम में मन कैसे लगेगा? जब मन एक जंगली बंदर की तरह उछल-कूद मचा रहा हो तो कार्य कैसे होगा?

यह तो सिक्के का एक पहलू हुआ। अब हम दूसरे पहलू को देखें। एक बात तो निश्चित है कि हर व्यक्ति जीवन में कभी-न-कभी एकाग्रता का, मनोयोग का या वर्तमान के भरपूर आनन्द का अनुभव करता ही है, भले ही यह अनुभव बहुत कम समय के लिए हो। इस दौरान व्यक्ति किसी कार्य में या किसी अति रुचिकर विषय-वस्तु में पूर्णत: लीन हो जाता है। यदि आप चिंतन करें तो पायेंगे कि एकाग्रता के वे क्षण अति प्रसन्नता और आनन्द के क्षण थे। आप चाहें तो अपनी स्मृति को गहराई से टटोलकर उन क्षणों को अभी जीवंत बना सकते हैं और इसकी सत्यता

का पता लगा सकते हैं। यदि आप नियमित योगाभ्यास करते हैं तो आपको मालूम होगा कि कभी-कभी आनन्द के आंतरिक स्फुरण का अनुभव होता है, विशेषकर जब आप मानसिक रूप से संतुलित, सौम्य और शांत होते हैं तथा अपनी साधना को अति लगन, रुचि और सजगता के साथ करते हैं। प्रसन्नता और आनन्द के उन जबरदस्त अनुभवों का एक प्रमुख कारण है—वर्तमान की जीवंतता। इसीलिए उन क्षणों को भूलना मुश्किल होता है।

वर्तमान क्षणों को पूर्णरूपेण जी लेना एक कला है, एक प्रतिभा है। योग में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। केवल सोचने या कहने से इस प्रतिभा को विकसित नहीं किया जा सकता। अगर कोई व्यक्ति कहता है कि 'अब मैं वर्तमान में रहूँगा' तो इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं क्योंकि अगले ही क्षण वह अपने भूत या भविष्य के चिंतन में लीन हो जाता है। भूत अथवा भविष्य के इस निरन्तर चिंतन में लीन रहने का कारण मानसिक समस्याएँ हैं। अत: वर्तमान के क्षणों को अधिकाधिक जीने हेतु मन की समस्याओं का यथासंभव निराकरण ही एकमात्र उपाय है। यदि आप मन को समस्याओं से मुक्त कर लेते हैं तो वर्तमान में रहना एक सहज प्रवृत्ति बन जाती है। तब किसी तरह के प्रयास की आवश्यकता नहीं रह जाती। आपका जीवन सहज गति से वर्तमान क्षणों में बीतने लगता है। भूत या भविष्य की कोई चिंता नहीं रह जाती। इस प्रकार हर क्षण पूर्णता का पर्याय बन जाता है।

वर्तमान में जीना तथा हाथ में लिये गये कार्य में पूर्णत: लीन रहना इस बात का संकेत है कि आपको मानसिक समस्याएँ हैं अथवा नहीं। यदि आपका मन निरंतर इधर-उधर भटकता है, काम में मन नहीं लगता तो निश्चित जानिये कि आपको मानसिक समस्याएँ हैं, आप विक्षेपों से ग्रस्त हैं। मन जितना इधर-उधर भटकता है, आप उतनी ही अधिक समस्याओं से ग्रस्त हैं। अत: स्वयं से पूछिये—जो कार्य मैं कर रहा हूँ, उसमें मेरा मन कितना लग रहा है? इस प्रश्न का उत्तर पूर्ण ईमानदारी से दें। इस तरह आप स्वयं जान जायेंगे कि आपको मानसिक समस्याएँ हैं अथवा नहीं।

हम निरंतर भूतकाल में क्यों खोये रहना चाहते हैं? हम क्यों निरंतर भविष्य की घटनाओं का पूर्वानुमान लगाते रहते हैं? इसका उत्तर बड़ा ही स्पष्ट और सीधा है—मनुष्य की पलायनवादी प्रवृत्ति तथा सुखद अनुभवों के प्रति आसक्ति। इसका मूल कारण असंतोष है। हम इस असंतुष्टि से बचने हेतु ही निरन्तर भूत के सुखद क्षणों में या भविष्य की सुखद कल्पनाओं में खोये रहना चाहते हैं। मान लीजिए किसी वजह से आप खिन्न हो जाते हैं। अब इस खिन्नता से बचने हेतु आप किसी पुराने मित्र के साथ बिताये दिनों की याद में खो जाते हैं या कल्पना करते हैं कि शाम को कैसा स्वादिष्ट भोजन मिलेगा। पलायन की यह विधि वर्तमान की कटुता को कम करने का सबसे सरल तरीका है, लेकिन इससे आंतरिक प्रसन्नता या सजगता की उच्च अवस्था प्राप्त नहीं होती।

अधिकांश लोग निरंतर स्वप्नों में जीते हैं। भले ही वे सोचें कि वे जाग्रत् हैं, लेकिन वास्तव में उनकी स्थिति निद्रा में चलने वाले व्यक्ति की तरह होती है। वे जीवन को ठीक जैसे का तैसा स्वीकार नहीं कर पाते, समझ नहीं पाते बल्कि अपने स्वनिर्मित स्वर्ग या नरक में जीते हैं। यह स्वयं से भागने का और अपनी मानसिक समस्याओं का सामना करने से बचने का तरीका है। जब तक व्यक्ति अपनी समस्याओं का सामना करने के लिए राजी नहीं हो जाता, तब तक उसके स्वप्न-जगत् में किसी परिवर्तन की संभावना नजर नहीं आती। ऐसे में वह कभी स्थायी आनन्द और संतोष की प्राप्ति हेतु सोच ही नहीं पाता।

वास्तव में जीवन को यथावत् देखने तथा अपनी कल्पना के घेरे से बाहर निकलने के लिए मन को परिष्कृत और शुद्ध करना प्रथम शर्त है। यह कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिए साहस और शक्ति चाहिये, क्योंकि अवचेतन मन में भय के मूल कारण निहित रहते हैं। कभी-कभी इन मूल कारणों से सीधा सामना हो जाना काफी खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इसलिए भयमुक्त होकर उनका निराकरण करने का निर्णय लेना होगा। दीर्घकाल में प्राप्त होने वाले परिणाम काफी आश्चर्यजनक होंगे और आप महसूस करेंगे कि आपका प्रयास निरर्थक नहीं गया। धीरे-धीरे जीवन में सुखद परिवर्तन आयेगा और तब आप आनन्द के सही अर्थ को समझने लगेंगे।

मानसिक समस्याएँ और रोग

मानव मन अनेक स्तरों पर निरन्तर कार्यरत रहता है। वास्तव में यह प्रक्रिया बिना किसी बाधा के सहज रूप से सम्पन्न होनी चाहिये। लेकिन ऐसा हो नहीं पाता क्योंकि

अधिकांश लोग निराशा आदि के कारण निरन्तर मानसिक कब्ज और अपचन से ग्रस्त होते हैं। इससे मन में मनोवैज्ञानिक कुण्ठाओं का निर्माण होता है। जब ये कुण्ठायें तीव्र और गंभीर होती हैं तो व्यक्ति के जीवन में मनोकायिक रोगों का आविर्भाव होता है। कुण्ठायें तीव्र न हों तो परिणाम निराशा, खिन्नता, विषाद, अप्रसन्नता आदि के रूप में प्रकट होता है।

आज इस बात को व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है कि शरीर में होने वाले अधिकांश रोगों का कारण मन में छिपा हुआ है। आधुनिक भाषा में इन्हें मनोकायिक रोग के नाम से पुकारते हैं। उदाहरण के लिए कैंसर को ही लें। कैंसर का एक मुख्य कारण सिगरेट पीना है, ऐसा अनेक लोगों का मत है। इस संदर्भ में अनेक आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि सिगरेट पीने से कैंसरग्रस्त होने की संभावना ज्यादा रहती है। शायद यह सत्य हो, लेकिन एक महत्त्वपूर्ण तथ्य को भुला दिया गया है। साधारणत: ऐसा देखा गया है कि अति तनावग्रस्त लोग ही सिगरेट पीते हैं। हमारे विचारानुसार कैंसर का कारण सिगरेट पीना नहीं, बल्कि मानसिक तनाव है। सिगरेट पीना भी कुछ हद तक इसका कारण हो सकता है, लेकिन यह प्रमुख नहीं, गौण कारण है।

ठीक यही बात मधुमेह पर लागू होती है। अधिकांश लोग पैंक्रियाज़ की कार्यक्षमता में कमी को मधुमेह का कारण मानते हैं। निस्संदेह शरीर में इन्सुलिन की कमी का यह स्पष्ट कारण है और इस कमी के कारण ही मधुमेह होता है। लेकिन सवाल उठता है कि पैंक्रियाज़ में दोष उत्पन्न क्यों हुआ? आश्रम में आने वाले मधुमेह के विभिन्न रोगियों से मिलने के बाद हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि मधुमेह का मूल कारण मन में छिपा होता है। मानसिक विक्षेप तथा निरन्तर बने रहने वाले तनाव शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यप्रणाली में व्यवधान उत्पन्न कर देते हैं। हम मधुमेह के ऐसे अनेक रोगियों को जानते हैं जो योगाभ्यास द्वारा शरीर और मन को शांत करना सीखकर अपने रोग से या तो पूर्णत: मुक्त हो गये या बहुत राहत का अनुभव किया। यह इस बात का संकेत है कि मधुमेह का कारण मन में निहित है।

इसी तरह मिरगी, हृदय सम्बन्धी रोग, अल्सर आदि न जाने कितने रोग हैं, जिनका नाम हम इस सूची में सम्मिलित कर सकते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वास्थ्य का गहन सम्बन्ध मन से है। सच तो यह है कि मन के विक्षेपों के निराकरण से शारीरिक स्वास्थ्य के स्तर में आश्चर्यजनक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। अनेक परिस्थितियों में असाध्य समझे जाने वाले रोगों का चमत्कारिक निदान अवचेतन मन के गहन शिथिलीकरण तथा उसमें निहित समस्याओं के निराकरण द्वारा होते देखा गया है।

संयोगवश यही बात सर्दी-जुकाम जैसे साधारण रोगों पर भी लागू होती है। सामान्यत: इन रोगों का कारण कीटाणुओं को माना जाता है। हम यह नहीं कहते

कि यह सत्य नहीं है, लेकिन साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में इतनी आंतरिक प्रतिरोधक क्षमता होती है कि वह रोगों को उत्पन्न होने से रोक सके। मानसिक समस्याएँ शरीर की इस क्षमता को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि स्वच्छ, शांत और स्थिर मन शरीर को अपने कार्यों को निर्विघ्न सम्पादित करने का मौका प्रदान करता है। इसलिए आप जितनी समस्याओं का निराकरण करेंगे, उतने ही रोगों से कम प्रभावित होंगे। शांत, प्रसन्नचित्त लोग प्राय: तनावग्रस्त लोगों की अपेक्षा रोगों से कम प्रभावित होते हैं।

अपने मन को नकारात्मक विचारों और समस्याओं से मुक्त कीजिए। इसका आपके स्वास्थ्य पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा। यदि आप किसी रोग से ग्रस्त हैं, विशेषकर हृदय रोग या कैंसर जैसे गंभीर रोग से, तो मन को शांत और शिथिल करना सीखें। इससे आश्चर्यजनक लाभ होगा। योग का अभ्यास करें। यह रोगों के निराकरण का समुचित मार्ग है। अन्य उपचार-पद्धतियाँ सतही हैं, वे केवल लक्षणों का निराकरण करती हैं, मूल कारणों का नहीं।

मानसिक समस्याओं के निराकरण हेतु ध्यान के अभ्यास

मानसिक समस्याओं के निराकरण में ध्यान की विभिन्न विधियाँ सहायक और लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं। ध्यान की साधना में आप जैसे-जैसे प्रगति करते जायेंगे, दक्ष होते जायेंगे और साथ ही शांत, शिथिल एवं स्थिर रहना सीखते जायेंगे, वैसे-वैसे अपने अवचेतन मन की गहराई में छिपे रहस्यों को खोज पायेंगे। इस दौरान मन में अनेक झाँकियाँ और विचार आ सकते हैं। इनमें से अनेक आपके अवचेतन में निहित दमित समस्याओं के द्योतक होते हैं। यदि आपको इस तरह का अनुभव न हो तो भी निराश न हों, क्योंकि सफलता प्राप्ति हेतु पर्याप्त समय तथा नियमित अभ्यास, दोनों ही जरूरी हैं।

अभ्यास के दौरान आपका सामना मन के किन्हीं वीभत्स पक्षों से हो सकता है। इन्हें किसी भी परिस्थिति में दबाने का प्रयास न करें बल्कि इन्हें उजागर होने दें। इनके परिणामस्वरूप भय जैसी भावनात्मक समस्याओं का आविर्भाव भी हो सकता है और यह अपेक्षित भी है। अवचेतन मन से उठने वाले इन बुलबुलों को ऊपर आने दें तथा यथासंभव राग-द्वेष रहित साक्षी भाव से उनका अवलोकन करें। आपका उनसे कोई भावनात्मक सम्बन्ध न रहे। केवल उनके प्रति सजग रहना आवश्यक है, इस बात का ख्याल रखें। यही नहीं, यह भी याद रखें कि यदि आप उनसे संघर्ष करते हैं या उनसे आनन्द उठाने का प्रयत्न करते हैं, तब भी आप उनका निराकरण नहीं कर सकते। अत: मन की ऊपरी सतह पर आने वाले इन सुखद अथवा दु:खद बुलबुलों को पूर्ण अनासक्त भाव से देखते जायें। ऐसा महसूस करें मानो वे आपसे पूर्णतया अलग घटनाएँ हैं। आपको इस तरह अभ्यास करना होगा

कि मन में उठने वाले विचार आपको अपने से पूर्णत: भिन्न दिखलाई पड़ें। उन्हें अपना अभिन्न अंग न बनायें, उनसे एकीकृत न हों, क्योंकि इससे वे पुन: अवचेतन में धकेल दिये जायेंगे।

अवचेतन मन का जीवन पर गहन प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव से मुक्ति पाने के लिए अवचेतन की अभिव्यक्तियों के प्रति अनासक्त भाव से सजग रहना चाहिए। अन्तर्निहित विक्षेपों और समस्याओं को मन से निष्कासित करते हेतु उन्हें सजगतापर्वूक जानना और समझ लेना पर्याप्त है। आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि अवचेतन की समस्याओं के प्रति सजग हो जाने मात्र से उनका मन से निष्कासन कैसे हो जाता है? पहली बात तो यह कि अवचेतन मन की समस्याओं को उजागर करने हेतु पर्याप्त शिथिलीकरण आवश्यक है। इसके बिना आपकी सजगता बहिर्मुखी ही बनी रहेगी, वह अन्तर्जगत् की ओर अभिमुख नहीं हो पायेगी। बाह्य जगत् में होने वाले अनुभवों द्वारा भी आप इसे जान सकते हैं। जब आप विश्रांत होते हैं तब विभिन्न घटनाओं का वैसा प्रभाव नहीं पड़ता जैसा तनावग्रस्त अवस्था में पड़ता है। जब आप शांत होते हैं तो विभिन्न परिस्थितियों को एक नये ही दृष्टिकोण से देखते हैं। उनका आपके व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। ध्यान के दौरान अवचेतन मन की समस्याओं के साथ भी ठीक यही होता है। जैसे ही आप उन्हें स्पष्ट रूप से जान और समझ लेते हैं, वैसे ही उनका प्रभाव क्षीण हो जाता है। विश्रांति और सजगता द्वारा आप सहज ही उन्हें निष्कासित कर देते हैं।

इस संदर्भ में एक तथ्य और है जिसे अच्छी तरह समझ लेना जरूरी है। हम भले ही बोलचाल में कहते हैं कि समस्याओं का मन से निष्कासन होना चाहिये, लेकिन यह अभिव्यक्ति मात्र है। वास्तव में मन पर एक बार जो प्रभाव पड़ गया, वह चिरस्थायी होता है। अत: जब हम मानसिक समस्याओं के निष्कासन की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य होता है आंतरिक स्मृतियों के प्रभावस्वरूप व्यक्ति के मन में होने वाली प्रतिक्रिया का निष्कासन। हम कह सकते हैं कि प्रत्येक मानसिक समस्या के दो पक्ष होते हैं, एक मूल कारण और दूसरा, उसके फलस्वरूप होने वाली भावनात्मक प्रतिक्रिया। इसलिए जब कोई मानसिक समस्या दूर हो जाती

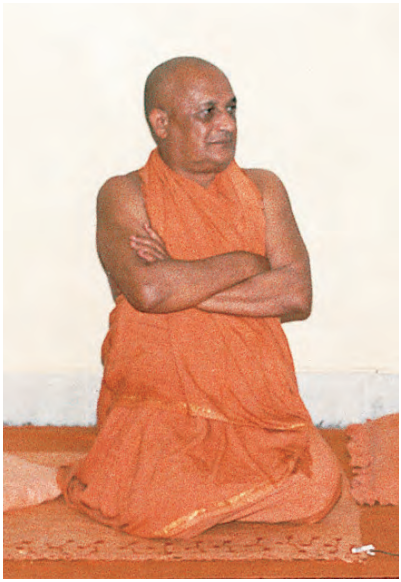

है तो वास्तव में उस समस्या से जुड़ी भावनात्मक प्रतिक्रिया को शांत अथवा निष्प्रभाव कर दिया जाता है। दूसरे शब्दों में भावनात्मक प्रतिक्रिया तथा अवचेतन मन में निहित समस्या के बीच सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर एक ऐसे व्यक्ति को लीजिये जो गाय के सामने आ जाने पर भयभीत हो जाता है। शायद इसका कारण बचपन में गाय के सींग से लगी चोट की स्मृति हो सकती है। ध्यान के द्वारा जब इस समस्या का निराकरण हो जाता है तब भी अवचेतन मन से बचपन की वह स्मृति मिटती नहीं, बस गाय को देखकर मन में होने वाले भय का संचार अब नहीं होता। इसलिए जब हम मानसिक समस्याओं के निराकरण की बात करते हैं तो हमारा यही तात्पर्य होता है, अर्थात् भावनात्मक प्रतिक्रियाओं की निष्क्रियता।

अवचेतन मन में संगृहीत संस्कारों को अनासक्ति और सजगता के साथ अच्छी तरह जानने-समझने का महत्त्व अब स्पष्ट हो जाता है। इसका उद्देश्य अवचेतन समस्याओं से होने वाली भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को परिवर्तित करना है ताकि व्यक्ति निराशा से ग्रस्त होने के बजाय उनसे अप्रभावित रह सके। जब भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं होगी तब आप अपनी समस्या का स्वयं ही समाधान कर लेंगे।

ध्यान द्वारा मानसिक द्वन्द्व और भावनात्मक प्रतिक्रिया के बीच केवल सम्बन्ध-विच्छेद ही नहीं होता, बल्कि यदि गंभीरता एवं निपुणता के साथ किया जाए तो यह आनन्द तथा ज्ञान भी प्रदान करता है। ये ध्यानजनित अनुभव इतने प्रबल होते हैं कि मानसिक समस्याएँ गौण और महत्त्वहीन जान पड़ती हैं। व्यक्ति आनन्द और ज्ञान में हुई वृद्धि से इतना प्रभावित हो जाता है कि वह जीवन को एक नये रूप में देखने लगता है। अन्य लोगों और परिस्थितियों के प्रति विचार और व्यवहार में आशावादी परिवर्तन होता है। इससे साधक की व्यक्तिगत समस्याओं का स्वत: ही निराकरण हो जाता है।

यदि आप जीवन में शांति और आनन्द की अपेक्षा रखते हैं तो निश्चय ही अभी से ध्यान का अभ्यास प्रारंभ कर दें। ध्यान के अभ्यास से मेरा तात्पर्य आसन, प्राणायाम और शिथिलता के विभिन्न अभ्यासों से भी है, क्योंकि यदि इनका अभ्यास उचित ढंग से किया जाए तो ये ध्यान के ही विभिन्न स्वरूप हैं।

श्रद्धांजलि

छत्रपति-चतुष्पदी

गुरुकुले गुरुभक्त्या गुरुहृत् जयति स्म यः।
छत्रपतिः चक्रवर्ती दिग्विजयी सः पातु नः॥1॥

जो गुरु-आश्रम में गहन गुरुभक्ति द्वारा अपने गुरु का हृदय जीता करते थे, ऐसे छत्रपति, चक्रवर्ती, दिग्विजयी हमारी रक्षा करें।

योगबलेन सम्पूर्णसंसारोऽयं येन जितः।
छत्रपतिः चक्रवर्ती दिग्विजयी सः पातु नः॥2॥

जिन्होंने योग के बल पर सम्पूर्ण संसार को जीत लिया, ऐसे छत्रपति, चक्रवर्ती, दिग्विजयी हमारी रक्षा करें।

बाह्याभ्यन्तर-पंचाग्नीन् तपोभूमौ जितवान् यः।
छत्रपतिः चक्रवर्ती दिग्विजयी सः पातु नः॥3॥

जिन्होंने अपनी तपोभूमि में बाहर और भीतर की पाँच अग्नियों को जीत लिया, ऐसे छत्रपति, चक्रवर्ती, दिग्विजयी हमारी रक्षा करें।

अंते महासमाधिना मृत्युमपि व्यजयत् यः।
छत्रपतिः चक्रवर्ती दिग्विजयी सः पातु नः॥4॥

जिन्होंने अंत में महासमाधि का वरण कर साक्षात् मृत्यु को भी जीत लिया, ऐसे छत्रपति, चक्रवर्ती, दिग्विजयी हमारी रक्षा करें।

सहज साधना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'भक्ति योग सागर–2' से उद्धृत

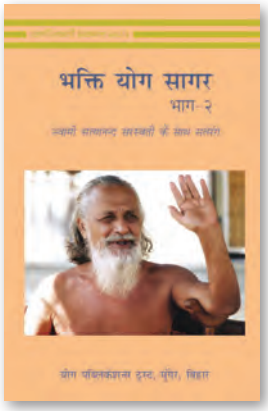

साधना दो तरह की होती है। एक साधना है जिसमें साधक का अहंकार काम करता है और दूसरी साधना है जिसमें साधक की विनम्रता काम करती है। जब साधक में अहंकार होता है, तब वह किसी प्राप्ति के लिए या किसी इच्छा से या किसी प्रयोजन से साधना करता है। इस साधना से उसे प्राप्ति होती भी है और नहीं भी होती। सफलता मिलती भी है और नहीं भी मिलती। यह अहंकार जनित साधना कठिन है, इसका फल भी कठिनाई से मिलता है। आधे रास्ते में ही रेलगाड़ी फेल हो जाती है। गृहस्थों की तो खैर फेल होती ही है, महात्माओं की भी फेल होती है। साधना के आगे का जो पद है, वह दुर्लभ है। मार्ग में इतनी कठिनाइयाँ आती हैं कि व्यक्ति घबरा जाता है। ये सभी कठिनाइयाँ आदमी के अंदर मौजूद हैं। तुम्हारे मन में, तुम्हारी वृत्ति में, तुम्हारे अहंकार और तुम्हारी इच्छाओं में यह सब विद्यमान है। यह अहंकार वाली साधना तो कभी पूरी होगी नहीं, चाहे वह व्यक्ति या उसका गुरु कोई भी हो। मैं सत्य युग, त्रेता युग या द्वापर युग की बात नहीं कर रहा हूँ, मैं इस युग की बात कर रहा हूँ।

आज यदि तुम चुपचाप एक जगह अखण्ड वृत्ति में बैठ जाओ और अपना सोऽहं-सोऽहं का जप शुरू कर दो, तो जैसे ही तुम्हें एकाग्रता की प्राप्ति होगी, वैसे ही अन्दर से विकार निकलने लगेंगे। ये विकार उकता देंगे, धक्का देकर रख देंगे। फिर साधक दुबारा शुरू नहीं कर सकता है। इसलिए साधना के विषय में मुझसे कुछ पूछना नहीं और यदि मैं बताऊँगा, तो उसका कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि मैं तो तुम्हारे साथ चलने वाला हूँ नहीं। मैं तो साधु हूँ– *साधु यार किसका, लगाया दम खिसका*। हम लोग किसी के भी होकर नहीं रहते।

अब रही दूसरी साधना, जो अहंकार रहित है। अहंकार रहित साधना केवल भक्ति-भावना से की जाती है। इसमें योग का भाव नहीं रहता, कुण्डलिनी का भाव नहीं रहता। इसमें केवल भक्ति-भाव रहता है। भक्ति का मतलब हुआ, भगवान से तुम्हारा कोई सम्बन्ध है। चाहे तुम भगवान के भाई हो, नौकर हो या नालायक बेटे हो।

भगवान के साथ कोई सम्बन्ध, जो स्वाभाविक हो, जो सहज हो, जोड़ना पड़ता है। साधना में आगे बढ़ना है तो साधना से प्राप्त होने वाले फल और कुफल

अर्थात् सफलता और विफलता की चिन्ता छोड़ दो। जो मिले, उसे स्वीकार करना है। दु:ख में रोना नहीं और सुख में हँसना नहीं, रोग में चिल्लाना नहीं और भोग में नाचना नहीं। जो मिले, सो ठीक है।

इसे कहते हैं शरणागति या समर्पण का भाव। समर्पण में तुम्हारी पसंद का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वहाँ तुम भिखारी हो। मैं तुम्हें गेहूँ की दो रोटियाँ दे देता हूँ या मक्के की, बासी देता हूँ या ताजी, तुम्हारी पसंद का कोई सवाल नहीं है। तुम यह नहीं कहोगे कि मुझे गेहूँ की ही चाहिए या ताजी चाहिए या चुपड़ी रोटी चाहिए। नहीं, तुम्हें लेना है तो लो, नहीं तो जाओ। यह भावना होती है इस साधना की। साधना की यही सर्वोत्तम भावना है, जो आज के युग में कोई नहीं कर सकता।

इसमें एक जगह बैठने की जरूरत नहीं है। इसमें भावना बनाने की भी जरूरत नहीं है। इस साधना में गुरु की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि यह जो साधना तुम कर रहे हो, वह भगवान तुमसे करा रहा है। तुम उसके नौकर हो और अपने नौकर के नाते वह तुमसे बोलता है, 'जप करो', तो फिर जप करो। जैसे मालिक नौकर से कहता है—चाय बनाओ, तो वह चाय बनाता है। वह कहता है कि बत्ती बंद करो और पंखा चलाओ, तो वैसा ही करता है। उसी प्रकार भगवान तुमसे कहता है कि बैठो, आँखें बंद करो, भगवद्-भजन करो, तो तुम्हें इतना ही बोलना है, 'ठीक है मालिक, ऐसा ही करेंगे।' अब मन नहीं लग रहा है तो नहीं लग रहा है, पर उसका यही हुकुम है। यह अहंकार रहित साधना अगर कोई आदमी करे और सोचे कि मैं नहीं कर रहा हूँ, मेरे से कराई जा रही है, तो कुछ बात बने। इस भाव से हर व्यक्ति को बालक की तरह, बच्चे की तरह विनम्र भाव से, सरल भाव से भगवान का भजन करना चाहिए।

सुबह एक-आध घण्टा भगवान की नौकरी निभा लो, राम की सेवा कर लो, इतना बहुत है। इस कलियुग में अगर बहुत अधिक साधना करनी है, तो उसकी गारंटी मैं नहीं देता, क्योंकि मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भी जो लोग बहुत अधिक साधना करते हैं, वे थोड़े असामान्य हो जाते हैं। यह सभी जगह देखा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने इस पर काफी चर्चा की है और बात भी सच्ची है कि जो बहुत ज्यादा साधना करते हैं, जो एकाग्रता का बहुत अधिक अभ्यास करते हैं, उनके दिमाग में विद्युत-चुम्बकीय तरंगें ऐसे स्तर पर चली जाती हैं जहाँ उन्हें उदासी हो जाती है। उन्हें पता नहीं चलता कि क्या हो रहा है। मस्तिष्क की तरंगें गिरकर अल्फा स्तर में आ जाती हैं, जिसके बाद उन्हें विषाद होने लग जाता है।

विषाद होने से चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है। व्यक्ति दूसरों पर ज्यादा संदेह करने लग जाता है। छोटी-छोटी बातों पर उसे डर लगने लगता है। दरवाजा बंद करने और खोलने में भी उसको चोट लगती है। इस युग में वैसे मजबूत लोग नहीं हो रहे हैं, जैसे सत्य युग और त्रेता युग में होते थे। अब दूध तो तुम लोगों को पीने को मिलता नहीं, मिर्ची और मसाले डाल कर पतली दाल बनाकर सारे परिवार का

पालन करना पड़ता है। ऐसा नहीं कि चार केले, दो संतरे, या दो सेब खा लिये, थोड़ा पनीर खा लिया और एक गिलास दूध या दही ले लिया। इतनी तो किसी की हिम्मत नहीं, क्योंकि पास में पैसा नहीं है। थोड़ी-सी दाल उबालकर मिर्ची के साथ पेट में डाल लेते हो या रोटी डुबा कर खा लेते हो। इससे तो साधना होगी नहीं। साधना के लिए भोजन पूरा सात्त्विक होना चाहिए। भोजन ही नहीं, और भी चीजें हैं।

जैसे लोग, वैसी गाड़ी होनी चाहिए। एक टन वाली गाड़ी पर पाँच टन का बोझ लादोगे तो उसका शॉक एब्ज़ॉर्बर खत्म हो जाएगा। अब तुम्हारी गाड़ी है एक टन की और माल लाद रहे हो दस टन तो गाड़ी का कचूमर निकलना ही है। साधना का पक्ष तुलसीदासजी ने उत्तरकाण्ड में अच्छी तरह समझाया है। कागभुशुंडी और गरुड़ के बीच संवाद है–

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेश होइ नहिं बारा॥
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

गरुड़ जी कहते हैं, 'कागभुशुण्डी, ऋषि-मुनियों ने तो कैवल्य पद की इतनी तारीफ की है और तुम उसकी निन्दा कर रहे हो, उसकी उपेक्षा किए जा रहे हो, मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है।' तब कागभुशुण्डी ने कहा, 'हे गरुड़, ऋषि-मुनियों ने जो कुछ कहा है, वह सत्य कहा है। कैवल्य पथ तो निर्विकल्प समाधि का मार्ग है,

निर्बीज समाधि का मार्ग है, जिसमें व्यक्ति वाल्मीकि की तरह पद्मासन लगाकर बैठ जाए और बैठे-बैठे पूरे शरीर में दीमक लग जाए तो भी पता न चले। यह दुर्लभ है और छुरे की धार पर चलने के समान है। इसलिए इस युग के मनुष्यों के लिए नहीं है, क्योंकि आज के मनुष्यों का मन माया में लिप्त है।'

जिस दिन से बच्चा पैदा होता है, उस दिन से उसे माया का प्रशिक्षण दिया जाता है, वैराग्य का नहीं। योग वाशिष्ठ में कहानी आती है कि रानी मदालसा ने अपने पुत्र को पैदा होते ही कहा– *शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि*– 'बेटे, तुम शुद्ध, बुद्ध, निरंजन हो। यह संसार माया है, तुम संन्यस्त हो।' आज कौन-सी माँ अपने पुत्र को ऐसा कहेगी?

जब ऐसी स्थिति है तब किस साधना की बात कर रहे हो? ऐसा नहीं है कि साधनायें नहीं हैं। अब ऋषि वाल्मीकि बैठ गए पद्मासन लगाकर तो बैठ गये। उनके पूरे शरीर में दीमक की बांबी लग गयी। दूसरी कहानी आती है जब कामधेनु को लेकर वशिष्ठ और विश्वामित्र के बीच झगड़ा हुआ। हारने के बाद विश्वामित्र को बड़ी शर्म महसूस हुई और वे यही कहते हुए निकल भागे– *धिक् बलं, क्षत्रिय बलं, ब्रह्मतेजो बलं बलम्।* उसके बाद वे तपस्या में जुट गये। तपस्या में ऐसे जुटे कि वह मन्त्र का जोर-जोर से उच्चारण करते जा रहे थे और उनके शरीर पर मिट्टी जमती जा रही थी। मिट्टी इतनी जमी कि उसके ऊपर एक वृक्ष पैदा हो गया। वृक्ष पर चिड़ियाँ रहने लगीं। चिड़ियाँ ही क्यों, साँप-बिच्छू भी रहने लगे। मगर उनके मन्त्र की ध्वनि निकलती गयी। वे ऐसे ही सालों तक जीये।

आजकल तो लोगों की उम्र बहुत कम है। शरीर रोगी और निर्बल है, मन कमजोर है। ऐसी स्थिति में मेरी समझ में सबसे सरल साधना भगवद्-सेवा है। भगवान की सेवा का मतलब है जैसे नौकर तुम्हारी सेवा करता है। सबेरे बिस्तर बना देता है, बर्तन मांज देता है, कपड़े धो देता है, बाजार से सामान लाता है, सब्जी ला देता है, खाना बना देता है, बस। इसी प्रकार तुम भी भगवान की सेवा के लिए एक-दो घण्टे निश्चित कर लो और उतनी देर तक मस्त रहो। फिर भूल जाओ कि तुम राजा हो, महाराजा हो, विरक्त हो, फकीर हो, गरीब हो, अमीर हो, ब्राह्मण हो, शूद्र हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, स्त्री हो, पुरुष हो, पुण्यात्मा हो, कुछ नहीं हो। उस समय समझना कि मैं भगवान का नौकर हूँ। बस, यही भाव रहना चाहिए।

यह समझ लो कि जो कुछ तुम्हे मिल रहा है, वह ईश्वर का वरदान है, तुम्हारे मंगल के लिए है। इस दशा में क्या कोई दु:खी, आगत से असंतुष्ट और अनागत के लिए परेशान रहेगा!

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आश्रम परम्परा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'रिखियापीठ सत्संग– 1' से उद्धृत

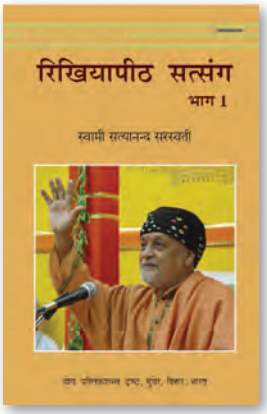

भारत में आश्रम राष्ट्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। हजारों वर्षों से यहाँ आश्रम-परम्परा चली आयी है। चाहे कोई भी धर्म भारत में आया, आश्रम-परम्परा बरकरार रही। चाहे बौद्ध धर्म हो या जैन या ईसाई या इस्लाम या शैव या वैष्णव, आश्रम जीवन इन सबका बहुत महत्त्वपूर्ण अंग रहा। इन आश्रमों में सरल नियमों और अनुशासनों का पालन होता रहा, चाहे ये बड़े हों या छोटे। भारत में लाखों आश्रम हैं। इनमें शिवानन्द आश्रम बहुत बड़ा आश्रम है।

आज योग हमारे समाज में बहुत लोकप्रिय हो गया है। पहले इसका प्रचलन बिल्कुल नहीं था। आश्रमों में संस्कृत, आयुर्वेद और वेदान्त की शिक्षा दी जाती थी। पर अब समय बदल रहा है। सभी जगह योगाश्रम स्थापित होते जा रहे हैं। छोटे-छोटे योग केन्द्र भी हैं, जहाँ एक योग शिक्षक होता है, कक्षाएँ चलती हैं। योगाश्रम भले ही छोटे क्यों न हों, उन्हें समय-समय पर महत्त्वपूर्ण उत्सवों का आयोजन करना चाहिए। सभी उत्सव मनाना तो संभव नहीं है, पर नवरात्रि, रामनवमी और झूलन जैसे महत्त्वपूर्ण त्योहारों को अवश्य मनाना चाहिए। हमने तो क्रिसमस मनाना भी शुरू कर दिया है, क्योंकि हमें यह भारतीय भावनाओं के अनुरूप लगता है।

वैदिक काल से ही हमारे देश के लोगों ने किसी सम्प्रदाय या धर्म की उपेक्षा नहीं की है। एक अरब से अधिक आबादी होने पर भी हम एक राष्ट्र हैं। इसलिए हमें हर आस्था में समानता का अनुभव करने का प्रयास करना है। इसी कारण हम क्रिसमस का त्योहार मनाते हैं और यह अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा है। केवल यहीं नहीं, शिवानन्द आश्रम में भी क्रिसमस मनाते हैं। भारत के अन्य अनेक आश्रमों में भी क्रिसमस मनायी जाती है। 25 दिसम्बर को क्रिसमस दिवस नहीं, झूलन कहो। जैसे आषाढ़ पूर्णिमा कृष्ण का झूलन है, रामनवमी राम का झूलन है, वैसे क्रिसमस क्राइस्ट का झूलन है। इन्हें मनाने में कोई हर्ज नहीं है। आध्यात्मिक आनन्द तो हमेशा उत्तम होता है, चाहे वह किसी नाम से भी मनाया जाए।

इस तरह का आयोजन सात्त्विक आनन्दोत्सव होता है। ऐसा ही नव वर्ष के दिन भी होता है। आश्रमों में ऐसे आयोजन निरंतर होने चाहिए। उस समय योगासन नहीं, कीर्त्तन होना चाहिए।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

इस युग का नाम है कलियुग। इस युग में भगवान के नाम के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है– *कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।* इसलिए तुम सब यहाँ कीर्त्तन का आनन्द ले रहे हो। कीर्त्तन तो आश्रम का आधार होना चाहिए– चाहे वह अक्षय तृतीया हो या मकर संक्रान्ति या और कोई कार्यक्रम। यदि कोई पण्डितजी हैं, तो थोड़ी पूजा और हवन भी कर दें।

हम यज्ञ कराते हैं। बच्चे यज्ञ करते हैं, हम द्रष्टा रहते हैं। ये बच्चे पाँच से तेरह साल के हैं, जिन्हें प्रशिक्षित करना है। अब नई पीढ़ी आ रही है। हर पीढ़ी की अपनी विलक्षणताएँ, समस्याएँ, कठिनाइयाँ और रुचियाँ-अरुचियाँ होती हैं। तुम्हारे बच्चे वह पसन्द नहीं करते जो तुम्हें पसन्द था। तुम्हारे बच्चे उसे नापसन्द नहीं करते जो तुम्हें नापसन्द है। परिवर्तन स्वाभाविक है। पीढ़ियों को तो बदलना है, जैसे दिन रात में बदलता है, रात दिन में बदलती है। शरद ऋतु को शिशिर ऋतु का स्वागत करना है, तो शिशिर को वसन्त के लिए स्थान खाली करना है। एक ही पीढ़ी, एक ही संस्कृति ठीक नहीं है। यह बड़ा उबाऊ हो जाता है।

आश्रम परिसर में गृहस्थाश्रम की मनोवृत्तियों का प्रवेश नहीं होना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि गृहस्थाश्रम खराब है, गृहस्थाश्रम भी एक आश्रम है। पर वह सम्पूर्ण जीवन का आश्रम नहीं, उसका एक चौथाई भाग है। ब्रह्मचर्य आश्रम पचीस प्रतिशत, गृहस्थाश्रम पचीस प्रतिशत, वानप्रस्थ आश्रम पचीस प्रतिशत और संन्यास आश्रम पचीस प्रतिशत। जो आश्रम चलाता है उसे स्नातक के समान रहना चाहिए।

मान लो, किसी आश्रम में एक आदमी रहता है। उसकी एक पत्नी है, दो बच्चे हैं, एक साली है, एक साला है। फिर उसकी सास होगी, फिर उसकी भाभी होगी। फिर तो वह आश्रम गृहस्थाश्रम हो गया, योगाश्रम नहीं रहा। योगाश्रम में तुम्हें ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जहाँ तुम्हारे ट्रस्टी और मित्र दस, बीस, तीस, चालीस की संख्या में आएँ और एक-दो दिन ठहरकर शान्ति और ऊर्जा प्राप्त करें। आश्रम भले ही ईंट, गारे आदि से बना है, पर वहाँ ऊर्जा का चक्र होना चाहिए। और हजारों वर्षों से भारत में हम यही करते आए हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् में एक प्रसंग है। विदेह जनक के गुरु, महामुनि याज्ञवल्क्य संन्यास लेकर वन में जाना चाहते थे। उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों– मैत्रेयी और कात्यायनी को बुलाया और उनसे कहा, 'मैं जा रहा हूँ। यह जो मेरी सम्पत्ति है, उसे तुम दोनों में बाँट देना चाहता हूँ।' कात्यायनी ने चुपचाप अपना भाग ले लिया, परन्तु मैत्रेयी ने कहा, 'मैं इस सम्पत्ति का क्या करूँगी? मुझे यह सम्पत्ति नहीं चाहिए। मुझे तो आध्यात्मिक ज्ञान दो।' आश्रम परिसर में रहने वालों का यही भाव होना चाहिए। जो ट्रस्टी हैं, बाहर रहने वाले सदस्य हैं, उनका अपना काम-धन्धा, अपना रोजगार, अपनी कठिनाइयाँ और समस्याएँ हैं, पर आश्रम को मन्दिर के समान रखना चाहिए। भले ही वह एक कमरे का ही क्यों न हो। यही परम्परा भारत में वैदिक काल से रही है। मैं यही चाहता हूँ कि इसे सदा इसी प्रकार सुरक्षित रखा और चलाया जाए।

भारत में योग

योग भारतवर्ष में हज़ारों साल तक सम्मान का विषय तो रहा है, किन्तु मार्केट में नहीं आया था। स्वामी विवेकानन्दजी भी इसको मार्केट में नहीं ला सके। मार्केट में हम लेकर आए। अब अच्छा किया कि बुरा, यह तो भविष्य ही बतलायेगा, क्योंकि हमारे ऋषि-मुनियों ने योग को केवल आश्रम तक ही सीमित रखा, बाहर जाने नहीं दिया। अब उन्होंने सही किया कि गलत, उसका आकलन तो हमलोग कर भी नहीं सकते हैं। विवेकानन्दजी ने योग शब्द को प्रचलित ज़रूर किया, मगर आसन, प्राणायाम, हठ योग आदि लोगों को मालूम नहीं था। आज पश्चिम के देशों में योग एक बहुत बड़ा विषय है। अब तो वहाँ योग की कम्पनियाँ हो रही हैं। जैसे हिन्दुस्तान लीवर और माइक्रोसॉफ्ट आदि बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ हैं, वैसे ही अब एक कम्पनी योग की हो गई है। उसकी बौद्धिक सम्पत्ति के प्रकाशन पर सर्वाधिकार सुरक्षित होना शुरू हो गया है।

हिन्दुस्तान में योग का प्रवेश हो रहा है। जिस रूप में योग यहाँ एक आम आदमी के काम की वस्तु बनेगी, जिसको कहते हैं उपभोक्ता के लिए, वह अभी हिन्दुस्तान में नहीं आया है। अभी योग हिन्दुस्तान के उपभोक्ता बाजार में नहीं आया है, केवल

प्रतिष्ठित बाजार में आया हुआ है। जिस दिन यह पाश्चात्य देशों की तरह उपभोक्ता बाजार में आ जाएगा, उस दिन हिन्दुस्तान में सबसे ज़्यादा रोजगार योग सिखलाने वालों को मिलेगा, क्योंकि योग ऐसी बीमारियों को ठीक करता है, जो न तो वाइरस से पैदा होती हैं, न बैक्टीरिया से, बल्कि खोपड़ी से पैदा होती हैं। एक प्रकार की बीमारी होती है, जिसको कहते हैं खोपड़ी से पैदा होने वाली बीमारी। वह बुखार भी हो सकता है, सर्दी-खाँसी भी हो सकती है, दमा भी हो सकता है, दस्त भी हो सकता है, कैंसर भी हो सकता है, कुछ भी हो सकता है, मगर उसकी पैदाइश होती है खोपड़ी से। और दूसरे प्रकार की बीमारी होती है जिसकी पैदाइश अन्य कारणों से होती है, उसके लिए डॉक्टर लोग बैठे हुए हैं।

इस दुनिया में कोई आदमी, जो बुढ़ापे तक ज़िन्दा रहा, बिना बीमारी के रहता नहीं है। जरा, मृत्यु, व्याधि, ये तीन हर आदमी के पीछे लगे हुए हैं। कोई आदमी कहे कि मैं बीमार हुआ ही नहीं, असम्भव है। जो बीमारी शारीरिक होती है, उसको डॉक्टर देखता है। यहाँ गाँव में तो सब शारीरिक बीमारियाँ हैं। मगर जो बीमारी आधुनिक सभ्यता के कारण हिन्दुस्तान में पैदा होगी, अभी वह सभ्यता भारत में पूरी तरह आई नहीं है। वह पाश्चात्य सभ्यता, जिसके बारे में हम अभी संकेत दे रहे हैं, तुम्हारी इस सभ्यता से पूर्णत: भिन्न है। गोरी जात का सोचने का तरीका एकदम अलग है। उनके पूरे-के-पूरे मूल्य ही अलग हैं। उनकी पूरी दृष्टि अलग है। मार्क ट्वेन ने कहा था, 'पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम।' वे दो एकदम अलग-अलग धाराएँ हैं। वह पश्चिमी धारा इस देश में बड़ी तेजी से आ रही है। अभी पूरी आ नहीं पाई है, लेकिन आएगी। उस समय जो रोग यहाँ के लोगों में पैदा होंगे, उन रोगों का इलाज योग के पास है। और उससे यह भी प्रतीत होता है कि किसी समय इस देश में एक ऐसी सभ्यता थी जिसके लिए योग की आवश्यकता पड़ी।

गाँव के आदमी को योग की ज़रूरत नहीं है। हमारे आस-पास जो गाँव के लोग रहते हैं, उन्हें योग की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। इनको तो ज़रूरत है ऐसे डॉक्टर की जो कोल्डरीन जैसी दवाई देते हैं। किन्तु जो व्यक्ति आधुनिक सभ्यता के अनुसार चलता है उसके मानसिक द्वन्द्व बढ़ते हैं। उसके कारण बीमारी होती है। और भारत में आधुनिक सभ्यता का प्रवेश अवश्य होगा, क्योंकि भारत के लोग पुरानी सभ्यता

से थक चुके हैं, इसे पसन्द नहीं करते हैं। चारों तरफ कचरा, टट्टी, गंदगी, ये सब चीजें पसन्द नहीं करते हैं। जो अमेरिका में देखकर आते हैं, बिल्कुल वही चाहते हैं। और वे चाहेंगे तो फिर नई सभ्यता आएगी। उस समय यहाँ हर व्यक्ति रोज किसी-न-किसी योग कक्षा में जाएगा और वहाँ से प्रशिक्षण लेकर आएगा।

कहते हैं कि इटली में पहले हर नुक्कड़ पर एक चर्च हुआ करता था। अब हर नुक्कड़ पर एक योगाश्रम है। जैसे यहाँ हर नुक्कड़ पर पान-बीड़ी की दुकान है, वैसे ही इटली में हर नुक्कड़ पर योगाश्रम बने हैं। एक जगह पर योग का झण्डा लगाकर बैठ जाते हैं और लोग आकर सीखते हैं, रोज या हफ्ते में एक दिन या दो दिन या तीन दिन। पचास-सौ डॉलर फेंक देते हैं। अब योग का समय आ रहा है। हिन्दुस्तान में अभी उतनी तेजी से नहीं आया है। हिन्दुस्तान में तो अभी मुंगेर या रिखिया आश्रम को छोड़कर कोई आश्रम ठीक से चलता नहीं है।

आश्रम में सात्त्विक उल्लास और आनन्द का वातावरण रहना चाहिए। उदासी नहीं, नीरसता नहीं, लटके चेहरे नहीं, उल्लास और आनन्द रहना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में तुम नाच-गा सकते हो, आनन्द मना सकते हो। पर यह सब सात्त्विक होना चाहिए। सात्त्विक आनन्द क्या है, राजसिक आनन्द क्या है? तामसिक आनन्द की क्या परिभाषा है? जब तुम्हारा आनन्द बाहरी वस्तुओं पर निर्भर रहता है, वह राजसिक आनन्द है। जब तुम्हारा आनन्द अपने आप पर निर्भर रहता है, आत्मानन्द, तो वह सात्त्विक आनन्द कहलाता है। जब तुम कीर्त्तन कर रहे हो, भजन गा रहे हो, महामृत्युंजय मंत्र का उच्चारण कर रहे हो, उस समय जो आनन्द आ रहा है, वह बाहर से नहीं, बल्कि भीतर से आ रहा है। वही सात्त्विक आनन्द है।

श्रद्धांजलि

छाया समाधि–संकल्प की पराकाष्ठा

दिग-दिगंतर है आलोकित
जिस ऊर्जा की ज्वाला से
कण-कण को संप्रेषित करता
गुरु-तत्त्व की प्रज्वाला रे!
हीरक जैसी छवि है जिनकी
कमल सरीखी चेतनता
रंगों में डूबा है जीवन
फिर भी पूरी पारदर्शिता!
नित नए संकल्प पिरोते
इच्छाशक्ति की माला में
यम की डोरी थाम रखे
निज पंचकोश की शाला में!
कैसे इसकी गरिमा को
स्थापित कर मैं पाऊँगा
सोच रहा मतवाला पीकर
गुरु-भक्ति का प्याला रे!
छाया-समाधि का संकेत
मिला जब इक दिन सपने में
अनुपम, अद्‌भुत कृति की रचना
गढ़ डाली स्वामी निरंजन ने!
गंगा-दर्शन में यादगार की
अप्रतिम स्मृति बना डाली
रोम-रोम पुलकित हो उठता
देख-देख यह कला निराली!
सहस्त्र किरणों की छटा से
अभिभूत है दुनिया सारी
गुरु तत्त्व की व्यापकता ने
नई चेतना भर डाली!
जोत योग की जली है तुमसे
बाती हम बन जाएँगे
स्नेह तुम्हारा पाकर गुरुवर
जीवन सुफल बनाएँगे!

–संन्यासी योगप्रिया, पटना

महापुरुष की छवि

संन्यासी श्रद्धामति

तुम समय की रेत पर, छोड़ते चलो निशाँ।
देखती तुम्हें ज़मीन, देखता है आसमाँ॥
लिखते चलो नौजवान, नित नयी कहानियाँ।
तुम मिटा दो ठोकरों से, ज़ुल्म की निशानियाँ॥

जब भी मैं यह प्रेरक गीत सुनती, मेरे सामने एक महान् पुरुष की छवि उभर आती। कौन ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो मुझे आत्मविश्वास से भर दे! जब मुझे प्रथम बार परमहंस स्वामी सत्यानंद जी के दर्शन हुए तब मुझे लगा अरे! यह वही हैं।

वे एक शलाका पुरुष थे। वे बाहर से बहुत कठोर दिखते, लेकिन अंतस्तल में बहुत ही कोमल। उनका स्वभाव थोड़ा गरम जरूर था, किन्तु उनके जैसा प्रेम करनेवाला मैंने जीवन में नहीं देखा। वे हर बात को काफी सोच-समझकर बोलते, जोर से हँसना उनकी पहचान थी। उनकी एक खूबी यह भी थी कि हर काम में वे आनन्द लेते। वे हर क्षेत्र का अनुभव रखते थे और उन्हें प्रत्येक विषय का गहन ज्ञान था।

वे तेज कदमों से चलने के अभ्यस्त थे। वे अपनी तेज रफ्तार को मात देना चाहते थे और निरंतर आश्रम स्थापना के अपने संकल्प के पीछे लगे रहते। एक मंजिल के

बाद कोई दूसरी मंजिल, दूसरी के बाद कोई तीसरी मंजिल लगातार उन्हें बुलाती रही, कोई विश्राम नहीं। वे थकान रहित व्यक्तित्व के धनी थे। ध्यान के गहन, एकांत क्षण हों या फिर शोरगुल से भरा सार्वजनिक माहौल, वे भीतर की लय में सधे रहते।

उनसे मिलने से पूर्व मेरे मन में 'जीवन' के प्रति अनेक प्रश्न उठते और किसी के भी उत्तर से मैं संतुष्ट नहीं होती। लेकिन परम आश्चर्य कि जब मैं उनसे पहली बार मिली तो वे जीवन पर ही सत्संग दे रहे थे– 'जीवन एक प्रयोग है। इसे प्रकृति कर रही है। अनेक जन्मों में अनेक प्रकार से वह जीवन को गढ़ती है, तराशती और बनाती है, पुन: बनाती है, तोड़ती है और जोड़ती है। जीवन एक पाठशाला है जहाँ हम विद्याभ्यास करते हैं।'

उन्होंने ही मुझे सिखाया कि जीवन में तुम्हारी हर चाल ऐसी हो जैसे शतरंज का प्यादा। हर कदम को फूँक-फूँक कर रखना चाहिये। समय-समय पर फैसले लेने ही होते हैं, चाल चलनी ही होती है। जीवन एक परीक्षा है। ज्यादातर लोग इसमें असफल हो जाते हैं क्योंकि वे दूसरों की नकल करते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि सबके प्रश्न-पत्र अलग-अलग होते हैं।

श्री स्वामीजी के व्यावहारिक और आत्मिक जीवन के तीन दृढ़ आधार थे– अपने गुरु स्वामी शिवानंद पर अटूट श्रद्धा, नैष्ठिक जीवन चर्या और जप-ध्यान। इनका उन्होंने जीवनपर्यन्त पालन किया।

5 दिसंबर 2009 को वे महासमाधि में लीन हुए। मुझे ऐसा लगा जैसे सब कुछ ठहर गया हो। उनकी याद बराबर मन को अशांत बनाती। हृदय से जब किसी को प्यार किया जाता है तब उसका अभाव बुरी तरह खलने लगता है। ऐसा ही कुछ मेरे साथ हुआ। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि मैं कहाँ जाऊँ जिससे मेरा मन शांत हो। आखिर मुझे वह जगह मिल गयी और वह है उनकी 'छाया समाधि'।

छाया समाधि के ऊपर दिन में सूर्य तो रात में चाँद हँसी-ठहाके लगाता। कुछ तो खास है इस जगह के गुरुत्वाकर्षण में। सोमवार और गुरुवार की संध्या का तो कहना ही क्या! इस जगह का कण-कण मचल उठता है, सब ओर खुशियाँ लहराती हैं। गुरु स्तोत्र, गुरु पादुका स्तोत्र और सद्गुरु वंदना की ध्वनि कानों को सुकून देती है और मन को विश्रांत करती है। लगता है जैसे पेड़-पौधे भी प्रार्थना कर रहे हों।

जब भी वहाँ बैठती हूँ, ऐसा प्रतीत होता मानो स्वयं परमहंसजी बिहार के एक प्रख्यात कवि की कविता सुना रहे हों–

मेरे जनाजे के साथ एक जश्न मनेगा
आँखों के आँसू से समंदर बनेगा।
मेरी यादों का सिलपट लगेगा
उसी में सारा किस्सा दिखेगा।

उन्हीं की छाया में समाधि बनेगी
आस्था के साथ विश्वास बढ़ेगा।
आगे बढ़ा तो बढ़ता ही रहेगा
भावों के सागर से भवंर बनेगा।

उसी से निकलकर आगे बढ़ेगा
सुना था, सुना हूँ, सुनाता रहूँगा
एक बार चला तो चलता ही रहूँगा।

जैसे ताजमहल शाहजहाँ का मुमताज के प्रति प्रेम का प्रतीक है, लौकिक प्रेम की पराकाष्ठा है, वैसे ही छाया समाधि स्वामी निरंजन जी का अपने गुरु, श्री स्वामी सत्यानंद जी के प्रति समर्पण का प्रतीक है, श्रद्धा और दिव्य प्रेम की पराकाष्ठा है।

आज मुझे गर्व है मैं उनके बताये संन्यास मार्ग पर चल रही हूँ। मैं धन्यवाद देती हूँ उन्हें जिन्होंने मुझे यहाँ पहुँचने में सहायता की, मुझे संवारा, पढ़ाया, उत्साह बढ़ाया तथा मेरे आँसू पोंछे। मेरे व्यक्तित्व पर सबसे गाढ़ा और अमिट रंग उनके द्वारा प्रदत्त संस्कारों का ही है। उनके प्रति भाव-समर्पण में शब्द छोटे और फीके पड़ जाते हैं।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

अजपा जप एवं चिदाकाश धारणा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 78, ISBN: 978-93-81620-08-3

योग की सबसे सरल साधना है अजपा जप, जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने तंत्र-शास्त्र, क्रिया योग एवं उच्च साधनाओं में सम्मिलित अजपा जप को इस पुस्तक में अत्यंत ही सरल अभ्यासों द्वारा समझाया है। मानसिक रोगों के उपचार, भावनात्मक संतुलन एवं शारीरिक शिथिलीकरण की यह पद्धति सभी प्रकार के अभ्यासियों के लिए सरल एवं उपयुक्त है। आध्यात्मिक लाभ एवं आत्मोत्थान के लिए प्रयासरत साधकों के लिए यह पुस्तक अनुकरणीय तथा उपयोगी है।

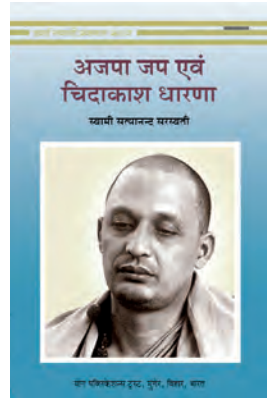

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

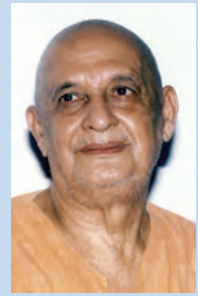

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका की वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में खोजने की सुविधा भी उपलब्ध है।

आवाहन वेबसाइट

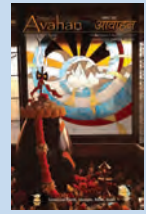

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2016-2017

दिसम्बर 19-23	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 28-31	श्री यंत्र आराधना
फरवरी 1	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 6-मई 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (हिन्दी)
फरवरी 12-18	योग कैप्सूल-श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 26-मार्च 4	योग कैप्सूल-पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
मार्च 19-25	योग कैप्सूल-गठिया सम्बन्धी (हिन्दी)
अप्रैल 9-19	योग कैप्सूल-पूर्ण स्वास्थ्य (हिन्दी)
अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2-जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1-जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।